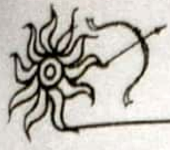


शबरी के बेर



अरण्यकाण्डम्

◀ प्रथमः सर्गः ▶ (१)

दण्डकारण्य में महर्षियों द्वारा राम का सत्कार—

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान्।
ददर्श रामौ दुर्घर्षस्तापसाश्रममण्डलम्॥ १॥

दुर्जेय एवं जितेन्द्रिय श्रीराम ने दण्डक नामक महावन में प्रवेश कर तपस्वियों के आश्रम-समूहों को देखा।

शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा।
मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसङ्घैः समावृतम्॥ २॥

ये आश्रम प्राणिमात्र के लिए आश्रय-स्थल थे। इनके आङ्गन सदा स्वच्छ रहते थे। ये आश्रम मृगों से भरपूर और पक्षिसमूहों से व्याप्त थे।

समिद्भिस्तोयकलशैः फलमूलैश्च शोभितम्।
आरण्यैश्च महावृक्षैः पुण्यैः स्वादुफलैर्युतम्॥ ३॥

इन आश्रमों में यज्ञ के लिए समिधाएँ, जल से भरे कलश और कन्दमूल-फल रखे थे। वे आश्रम उत्तम एवं स्वादिष्ट फलवाले जंगली महावृक्षों से व्याप्त थे।

बलिहोमार्चितं पुण्यं ब्रह्मघोषनिनादितम्।
पुष्पैर्वन्यैः परिक्षिप्तं पद्मिन्या च सपद्मया॥ ४॥

इन आश्रमों में नित्य बलिवैश्वदेवयज्ञ और पवित्र वेदध्वनि हुआ करती थी। यत्र-तत्र बिखरे हुए वन्य-पुष्पों से और कमलपुष्पों से युक्त सरोवरों से ये आश्रम सुशोभित थे।

स दृष्ट्वा राघवः श्रीमांस्तापसाश्रममण्डलम्।
अभ्यगच्छन् महातेजा विज्यं कृत्वा महद्धनुः॥ ५॥

तपस्वियों के आश्रममण्डल को देखकर महा-तेजस्वी श्रीराम ने अपने महाधनुष का चिल्ला उतारा और उन आश्रमों की ओर चले।

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्ट्वा महर्षयः।
अभ्यगच्छंस्तथा प्रीता वैदेहीं च यशस्विनीम्॥ ६॥

दिव्यज्ञान-सम्पन्न महर्षियों ने जब श्रीराम को आते हुए देखा तो वे भी प्रसन्न हो श्रीराम और यशस्विनी सीताजी की ओर चले।

अत्रैनं हि महाभागाः सर्वभूतहिते रतम्।
अतिथिं पर्णशालायां राघवं संन्यवेशयन्॥ ७॥

प्राणिमात्र के हित में रत उन महाभाग ऋषियों ने अपूर्ण एवं महान् अतिथि श्रीराम को ले जाकर अपनी पर्णशाला में ठहराया।

ततो रामस्य सत्कृत्य विधिना पावकोपमाः।
आजह्रुस्ते महाभागाः सलिलं धर्मचारिणः॥ ८॥

अग्नि के समान देदीप्यमान, महाभाग, धर्मचारी उन तपस्वियों ने श्रीराम का विधिपूर्वक सत्कार कर उन्हें हाथ-पैर धोने के लिए जल लाकर दिया।

मूलं पुष्पं फलं वन्यमाश्रमं महात्मनः।
निवेदयित्वा धर्मज्ञास्ततः प्राञ्जलयोऽब्रुवन्॥ ९॥

तत्पश्चात् वनवासी उन धर्मज्ञ महात्माओं ने कन्द-मूल, फल और फूल उनकी सेवा में अर्पण किये तथा हाथ जोड़कर बोले—

धर्मपालो जनस्यास्य शरण्यस्त्वं महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च राजा दण्डधरो गुरुः॥ १०॥

हे राम! आप वर्णाश्रम धर्म के पालक, शरणागतवत्सल और महायशस्वी हैं। आप पूजनीय हैं, मान्य हैं, गुरु हैं और दण्डधारी राजा हैं।



ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः॥ ११॥

हम लोग आपके राज्य में बसनेवाली आपकी प्रजा हैं, अतः आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए। आप चाहे नगर में रहें अथवा वन में हमारे राजा तो आप ही हैं।

न्यस्तदण्डा वयं राजञ्जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
रक्षितव्यास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनः॥ १२॥

हे राजन्! हम लोगों ने दण्ड देना छोड़ रखा है, क्रोध को त्यागकर इन्द्रियों को जीता हुआ है। तप ही हमारा एकमात्र धन है। जैसे माता गर्भ की रक्षा करती है उसी प्रकार आपको गर्भ के समान अपनी प्रजा की सदा रक्षा करनी चाहए।

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुण्यैर्वन्यैश्च राघवम्।
अन्यैश्च विविधाहारैः सलक्ष्मणमपूजयन्॥ १३॥

यह कहकर उन तपस्वियों ने वन में उत्पन्न होनेवाले फल-फूल-मूल एवं अन्य विविध प्रकार के आहारों से लक्ष्मणसहित श्रीराम का आदर-सत्कार किया।

➤ द्वितीयः सर्गः ➤ (२)

विराध का सामुख्य—

कृतातिथ्योऽथ रामस्तु सूर्यस्योदयनं प्रति।
आमन्त्र्य स मुनीन् सर्वान् वनमेवान्वगाहत॥ १॥

मुनियों का आतिथ्य स्वीकार कर श्रीराम ने (रात्रि में वहीं निवास किया।) अगले दिन सूर्योदय होने पर वे आश्रम के सभी मुनियों से आज्ञा लेकर गहन वन में प्रविष्ट हुए।

वनमध्ये तु काकुत्स्थस्तस्मिन् घोरमृगायुते।
ददर्श गिरिशृङ्गाभं पुरुषादं महास्वनम्॥ २॥

हिंसक पशुओं से परिपूर्ण उस घोर वन के मध्य में पहुँचकर श्रीराम ने विशालकाय, नरमांसभक्षी और महाशब्द करनेवाले एक राक्षस को देखा।

स रामं लक्ष्मणं चैव सीतां दृष्ट्वाथ मैथिलीम्।
अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रजाः काल इवान्तकः॥ ३॥

वह राक्षस राम, लक्ष्मण और सीता को देख क्रुद्ध होकर प्रलयंकारी काल के समान उन पर टूट पड़ा।

स कृत्वा भैरवं नादं चालयन्निव मेदिनीम्।
अङ्केनादाय वैदेहीमपक्रम्य ततोऽब्रवीत्॥ ४॥

वह महाभयंकर राक्षस गर्जन करके पृथिवी को कँपाता हुआ सीता को गोद में उठा कुछ दूर जाकर कहने लगा—

युवां जटाचीरधरौ सभार्यौ क्षीणजीवितौ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं शरचापासिधारिणौ॥ ५॥

कथं तापसयोर्वां च वासः प्रमदया सह।
अधर्मचारिणौ पापौ कौ युवां मुनिदूषकौ॥ ६॥

तुम जटा-चीरधारी हो, परन्तु स्त्री को साथ लिए हो—तुम अपने-आपको कुछ ही देर का मेहमान समझो। जटा-चीरधारी होकर भी हाथ में धनुष-बाण लेकर चलनेवाले तुम दोनों ने इस दण्डक वन में कैसे प्रवेश किया है। तपस्वियों के वेश में होकर भी तुम स्त्री के साथ क्यों वास करते हो? अधर्माचरण करनेवाले तथा मुनिसमाज को दूषित करनेवाले पापी तुम दोनों कौन हो?

अहं वनमिदं दुर्गं विराधो नाम राक्षसः।
चरामि सायुधो नित्यमृषिमांसानि भक्षयन्॥ ७॥

मैं विराध नामक राक्षस हूँ। मैं इस वन में शस्त्र लिए मुनियों का मांस खाता हुआ नित्य घूमा करता हूँ।

इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति।
युवयोः पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे॥ ८॥

यह सुन्दरी नारी अब मेरी भार्या होगी। संग्राम में तुम दोनों महापापियों का वध कर मैं तुम्हारा रक्तपान

करूँगा।

तस्यैवं ब्रुवतो धृष्टं विराधस्य दुरात्मनः।
श्रुत्वा सगर्वं वचनं सम्भ्रान्ता जनकात्मजा॥ ९॥

उस दुरात्मा विराध के धृष्टतापूर्ण और अहंकारयुक्त वचनों को सुनकर सीताजी घबरा गयीं।

तां दृष्ट्वा राघवः सीतां विराधाङ्कगतां शुभाम्।
अब्रवील्लक्ष्मणं वाक्यं मुखेन परिशुष्यता॥ १०॥

उधर श्रीराम सती-साध्वी सीता को विराध की गोदी में देख उदास होकर लक्ष्मणजी से बोले—

पश्य सौम्य नरेन्द्रस्य जनकस्यात्मसम्भवाम्।
मम भार्यां शुभाचारां विराधाङ्के प्रवेशिताम्॥ ११॥

हे सौम्य! देखो, महाराज जनक की पुत्री, शुभाचरणवाली मेरी पत्नी को विराध ने किस प्रकार अपनी बगल में दबोच रखा है।

परस्पर्शात्तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे।
पितुर्वियोगात्सौमित्रे स्वराज्यहरणात्तथा॥ १२॥

हे लक्ष्मण! सीता के राक्षस द्वारा स्पर्श होने से आज मुझे जितना दुःख हुआ है इतना दुःख मुझे पिता की मृत्यु और राज्य के छिन जाने से भी नहीं हुआ था।

इति ब्रुवति काकुत्स्थे बाष्पशोकपरिप्लुते।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धो रुद्धो नाग इव श्वसन्॥ १३॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मणजी की आँखों में आँसू भर आये, फिर रोके हुए फनियर साँप की भाँति क्रोध में भरकर फुंकार मारते हुए लक्ष्मणजी ने कहा—

अनाथ इव भूतानां नाथस्त्वं वासवोपमः।
मया प्रेष्येण काकुत्स्थ किमर्थं परितप्यसे॥ १४॥

हे राम! इन्द्र के समान सब प्राणियों के स्वामी होकर और मेरे जैसे सेवक के साथ रहते हुए आप अनाथों की भाँति सन्तप्त क्यों हो रहे हैं?

शरेण निहतस्याद्य मया क्रुद्धेन रक्षसः।
विराधस्य गतासोर्हि मही पास्यति शोणितम्॥ १५॥

क्रोध में भरकर, मेरे द्वारा बाण से मारे जाने पर, प्राणहीन इस विराध राक्षस का रक्त पृथिवी पान करेगी।

◀ तृतीयः सर्गः ▶ (३)

विराध-वध—

इत्युक्त्वा लक्ष्मणः श्रीमान्राक्षसं प्रहसन्निव।
को भवान्वनमभ्येत्य चरिष्यति यथासुखम्॥ १॥

ऐसा कहकर श्रीमान् लक्ष्मण ने मुस्कराते हुए उस राक्षस से पूछा—तुम कौन हो जो इस प्रकार स्वेच्छाचारी होकर इस वन में घूमा करते हो?

पुत्रः किल जयस्याहं मम माता शतह्रदा।
विराध इति मामाहुः पृथिव्यां सर्वराक्षसाः॥ २॥

मैं जय का पुत्र हूँ और मेरी माता का नाम शतह्रदा है। इस पृथिवी के सब राक्षस मुझे विराध के नाम से पुकारते हैं।

उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम्।
त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे॥ ३॥

तुम मेरे साथ युद्ध करके विजय प्राप्त करने की इच्छा को त्याग दो और इस स्त्री को यहीं छोड़कर जिधर से आये हो उधर ही भाग जाओ। मैं तुम लोगों के प्राण नहीं लूँगा।

तं रामः प्रत्युवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः।
राक्षसं विकृताकारं विराधं पापचेतसम्॥ ४॥

विराध के ये वचन सुन श्रीराम क्रोध में भर लाल-लाल आँखें कर उस पापी और भयङ्कर आकारवाले विराध से बोले—

क्षुद्र धिक्त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम्।
रणे सम्प्राप्स्यसे तिष्ठ न मे जीवन् गमिष्यसि॥ ५॥

हे अधम! क्षुद्रबुद्धि! तुझे धिक्कार है। तू निश्चय ही अपनी मृत्यु की खोज में है। तू तनिक खड़ा रह।



मुझसे युद्ध कर। तू आज जीता नहीं बचेगा।

ततः सज्यं धनुः कृत्वा रामः सुनिशिताञ्शरान्।
सुशीघ्रमभिसंधाय राक्षसं निजघान ह॥ ६॥

यह कह धनुष पर डोरी चढ़ाकर श्रीराम ने उस राक्षस को लक्ष्य बनाकर उस पर तीखे बाणों का प्रहार किया।

स विद्धो न्यस्य वैदेहीं शूलमुद्यम्य राक्षसः।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धस्तदा रामं सलक्ष्मणम्॥ ७॥

बाणों से विद्ध हुआ विराध सीता को वहीं छोड़ क्रोध में भरकर, त्रिशूल हाथ में ले श्रीराम और लक्ष्मण की ओर झपटा।

तच्छूलं वज्रसङ्काशं गगने ज्वलनोपमम्।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद रामः शस्त्रभृतां वरः॥ ८॥

तब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीराम ने आकाशस्थ विद्युत् के समान चमकनेवाले तथा वज्र के समान दृढ़ उस शूल को दो बाणों से काट दिया।

तौ खड्गौ क्षिप्रमुद्यम्य कृष्णसर्पोपमौ शुभौ।
तूर्णमापततस्तस्य तदा प्रहरतां बलात्॥ ९॥

जब उसका त्रिशूल कट गया तब राम और लक्ष्मण काले सर्प के समान अपनी-अपनी तलवारों को लेकर शीघ्र ही उस राक्षस के पास पहुँचे और उस पर बलपूर्वक प्रहार किया।

स वध्यमानः सुभृशं बाहुभ्यां परिरभ्य तौ।
प्रप्रकम्प्यौ नरव्याघ्रौ रौद्रः प्रस्थातुमैच्छत॥ १०॥

जब वह राक्षस तलवारों के आघात से अत्यन्त पीड़ित हुआ तब वह युद्ध से विचलित न होनेवाले नरकेसरी राम-लक्ष्मण को अपनी भुजाओं में भरकर, आगे बढ़ा।

ह्रियमाणौ तु तौ दृष्ट्वा वैदेही रामलक्ष्मणौ।
उच्चैः स्वरेण चुक्रोश प्रगृह्य सुभुजा भुजौ॥ ११॥

जब विराध राम और लक्ष्मण को हर कर ले चला तब सीताजी अपनी बड़ी-बड़ी भुजाओं को उठाकर उच्च स्वर से रो-रोकर कहने लगी—

एष दाशरथी रामः सत्यवाञ्शीलवाञ्शुचिः।
रक्षसा रौद्ररूपेण ह्रियते सहलक्ष्मणः॥ १२॥

हाय! यह विकराल राक्षस महाराज दशरथ के सत्यवादी, सदाचारी एवं सीधे-साधे पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण को हर करके ले जा रहा है।

मां वृका भक्षयिष्यन्ति शार्दूला द्वीपिनस्तथा।
मां हरोत्सृज्य काकुत्स्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम॥ १३॥

अब मुझे भेड़िए, शेर, चीते खा जायेंगे। हे राक्षसोत्तम! मैं तुझे नमस्ते[१] करती हूँ। तू इन राजकुमारों को छोड़ दे और इनके बदले मुझे हर ले।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।
वेगं प्रचक्रतुर्वीरौ वधे तस्य दुरात्मनः॥ १४॥

सीता के ऐसे वचन सुन दोनों वीर भाई श्रीराम और लक्ष्मण, उस दुरात्मा राक्षस को मौत के घाट उतारने के लिए शीघ्रता करने लगे।

तस्य रौद्रस्य सौमित्रिर्बाहुं सव्यं बभञ्ज ह।
रामस्तु दक्षिणं बाहुं तरसा तस्य राक्षसः॥ १५॥

उस भयंकर राक्षस की बायीं भुजा को लक्ष्मण ने और दायीं भुजा को श्रीराम ने वेगपूर्वक तोड़ दिया।

स भग्नबाहुः संविग्नो निपपाताशु राक्षसः।
धरण्यां मेघसङ्काशो वज्रभिन्न इवाचलः॥ १६॥

जब उस राक्षस की दोनों भुजाएँ टूट गईं तब मेघ के समान भयङ्कर वह राक्षस भयभीत हुआ मूर्च्छित होकर इस प्रकार भूमि पर गिर पड़ा जैसे वज्र के आघात से पर्वत टूटकर गिरता है।

मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिः सूदयन्तौ तु राक्षसम्।
उद्यम्योद्यम्य चाप्येनं स्थण्डिले निष्पिपेषतुः॥ १७॥

---

१. कुछ लोग 'नमस्ते' का नाम सुनकर चौंकते हैं, परन्तु अभिवादन के लिए इससे श्रेष्ठ और कोई शब्द हो ही नहीं सकता। वेदों में, उपनिषदों में, रामायण और महाभारत में यहाँ तक कि पुराणों में भी 'नमस्ते' का ही विधान है। यहाँ सीताजी राक्षस को 'नमस्ते' कह रही है। पौराणिकों को इससे शिक्षा ग्रहण कर इसको अपनाना चाहिए।



उस समय वे दोनों भाई उस राक्षस को घूँसों से मारते, पैरों से ठुकराते और उठा-उठाकर भूमि पर पटकते हुए उसका कचूमर निकाल डालते थे।

स विद्धो बहुभिर्बाणैः खड्गाभ्यां च परिक्षतः।
निष्पिष्टो बहुधा भूमौ न ममार स राक्षसः॥ १८॥

यद्यपि वह राक्षस बाणों से विद्ध था, तलवार के वारों से क्षत-विक्षत था, उसे बार-बार उठाकर भूमि पर पटका गया तथा तथापि वह मरा नहीं।

तं प्रेक्ष्य रामः सुभृशमवध्यमचलोपमम्।
भयेष्वभयदः श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्॥ १९॥

पर्वत के समान सर्वथा अचल एवं अवध्य उस राक्षस को देखकर भय के समय अभय देनेवाले श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—

तपसा पुरुषव्याघ्र राक्षसोऽयं न शक्यते।
शस्त्रेण युधि निर्जेतुं राक्षसं निखनावहे॥ २०॥

हे पुरुषसिंह! तपश्चर्या के कारण यह राक्षस शस्त्रों से नहीं मारा जा सकता, अतः आओ, इसे भूमि में गाड़ दें।

कुञ्जरस्येव रौद्रस्य राक्षसस्यास्य लक्ष्मण।
वनेऽस्मिन् सुमहच्छ्वभ्रं खन्यतां रौद्रकर्मणः॥ २१॥

हे लक्ष्मण! भयंकर कर्म करनेवाले, हाथी के समान विशालकाय इस राक्षस को गाड़ने के लिए तुम इस वन में एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदो।

इत्युक्त्वा लक्ष्मणं रामः प्रदरः खन्यतामिति।
तस्थौ विराधमाक्रम्य कण्ठे पादेन वीर्यवान्॥ २२॥

लक्ष्मणजी को गड्ढा खोदने की आज्ञा दे पराक्रमी श्रीराम अपने पैरों से इस विराध का गला दबाकर खड़े हो गये।

ततः खनित्रमादाय लक्ष्मणः श्वभ्रमुत्तमम्।
अखनत्पार्श्वतस्तस्य विराधस्य दुरात्मनः॥ २३॥

तब लक्ष्मणजी ने कुदाल लेकर उस विराध के पास ही एक लम्बा-चौड़ा गड्ढा खोदा।

तं मुक्तकण्ठं निष्पिष्य शङ्कुकर्णं महास्वनम्।
विराधं प्राक्षिपच्छ्वभ्रे नदन्तं भैरवस्वनम्॥ २४॥

तत्पश्चात् गर्दभ के समान विशाल कर्णवाले और भयंकर शब्द करनेवाले उस राक्षस के दबाये हुए गले को छोड़कर श्रीराम ने उसे गड्ढे में फेंक दिया।

➤ चतुर्थः सर्गः ➤ (४)

शरभङ्ग का ब्रह्मलोक-प्रस्थान—

हत्वा तु तं भीमबलं विराधं राक्षसं वने।
ततः सीतां परिष्वज्य समाश्वास्य च वीर्यवान्॥ १॥
अब्रवील्लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम्।
कष्टं वनमिदं दुर्गं न च स्मो वनगोचराः॥ २॥

उस वन में महापराक्रमी राम ने उस भयंकर और महाबली विराध राक्षस का वध कर सीता का आलिंगन कर और उसे सान्त्वना प्रदान करते हुए, अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मण से कहा—यह वन बड़ा दुर्गम और कष्टप्रद है। हम लोगों ने ऐसा विकट वन इससे पूर्व कभी नहीं देखा था।

अभिगच्छामहे शीघ्रं शरभङ्गं तपोधनम्।
आश्रमं शरभङ्गस्य राघवोऽभिजगाम ह॥ ३॥

अतः आओ, अब हम शीघ्र ही शरभङ्ग के आश्रम को चलें। ऐसा कहकर श्रीराम शरभङ्ग के आश्रम की ओर चले।

अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत्।
तस्य पादौ च संगृह्य राघवो वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

जिस समय राम शरभङ्ग के आश्रम में पहुँचे उस समय मुनिवर अग्निहोत्र कर रहे थे। श्रीराम ने उनके चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया और बोले—



आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने।
राघवेणैवमुक्तस्तु शरभङ्गोऽब्रवीद्वचः॥ ५॥

मैं इस वन में रहना चाहता हूँ। आप मुझे यहाँ रहने के लिए कोई स्थान बताइए। श्रीराम के ऐसा कहने पर शरभङ्ग बोले—

इह राम महातेजाः सुतीक्ष्णो नाम धार्मिकः।
वसत्यरण्ये धर्मात्मा स ते श्रेयो विधास्यति॥ ६॥

हे राम! इस वन में महातेजस्वी और धर्मात्मा सुतीक्ष्ण नामक एक ऋषि रहते हैं। वे आपके कल्याणार्थ आपके स्थानादि का सब प्रबन्ध कर देंगे।

इमां मन्दाकिनीं राम प्रतिस्त्रोतामनुव्रज।
नदीं पुष्पोडुपवहां तत्र तत्र गमिष्यसि॥ ७॥

हे राम! आप इस मन्दाकिनी नदी के किनारे-किनारे ऊपर की ओर जाइए। इस नदी में अनेक बड़े-बड़े फूल छोटी-छोटी नौकाओं की भाँति दिखाई देते हैं। उन्हें देखते हुए तुम सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँच जाओगे।

एष पन्था नरव्याघ्र मुहूर्तं पश्य तात माम्।
यावज्जहामि गात्राणि जीर्णां त्वचमिवोरगः॥ ८॥

हे नरकेसरी! यह मार्ग वहाँ जाने का है, परन्तु थोड़ी देर ठहर जाइए और मुझे देखिए, जब तक मैं इस जीर्ण शरीर को साँप की केंचुली की भाँति छोड़ न दूँ।

ततोऽग्निं सुसमाधाय हुत्वा चाज्येन मन्त्रवत्।
शरभङ्गो महातेजाः प्रविवेश हुताशनम्॥ ९॥

ऐसा कहकर महातेजस्वी शरभङ्ग ने अग्नि प्रज्ज्वलित करके मन्त्रपूर्वक घृत के द्वारा विशाल यज्ञ किया, फिर वे उस जलती हुई अग्नि में कूद पड़े।

तस्य रोमाणि केशांश्च ददाहाग्निर्महात्मनः।
जीर्णां त्वचं तथास्थीनि यच्च मांसं सशोणितम्।
रामस्तु विस्मितो भ्रात्रा भार्यया च सहात्मवान्॥ १०॥

उस समय अग्नि ने उन महात्म शरभङ्ग के रोम, केश, जीर्ण त्वचा, हड्डियाँ और रुधिरसहित माँस को भस्म कर डाला। भाई लक्ष्मण और सीतासहित श्रीराम इसे देखकर बहुत विस्मित हुए।

विशेष—ऋषि लोग अपने तप के द्वारा मृत्युञ्जय बन जाया करते थे। जब वे समझते थे कि हमारे शरीर जीर्ण हो गये हैं तब वे इच्छानुसार अपना शरीर त्याग दिया करते थे।

यह परम्परा पर्याप्त समय तक चलती रही। जब सिकन्दर भारत पर आक्रमण करने के लिए चला तो उसके गुरु ने कहा था कि भारतवर्ष से कोई योगी लाना। बहुत प्रयत्न के पश्चात् एक भारतीय योगी उसके साथ जाने के लिए तैयार हुआ। एक दिन प्रातःकाल उस योगी ने सिकन्दर को आदेश दिया कि चिता तैयार कराओ मैं अभी अपने शरीर को समाप्त करना चाहता हूँ। सिकन्दर ने ऐसा न करने के लिए बहुत अनुनय-विनय की परन्तु योगी ने कहा कि मेरी अवस्था अस्सी वर्ष की है। मुझे आज तक कभी ज्वर नहीं आया। आज मुझे ज्वर हो गया है, अतः मेरा शरीर अपवित्र हो गया है। मैं इसे समाप्त करना चाहता हूँ और उसने अग्नि में प्रविष्ट होकर अपने शरीर को भस्म कर दिया।

महर्षि दयानन्द भी मृत्युञ्जय थे। मौत उनके पास आती थी, परन्ते वे उसे ठोकर मारकर भगा देते थे। दीपावली के दिन उन्होंने अपनी इच्छा से ही देह-त्याग किया था।

◀ पञ्चमः सर्गः ▶ (५)

राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा—

शरभङ्गे दिवं याते मुनिसङ्घाः समागताः।
अभ्यगच्छन्त काकुत्स्थं रामं ज्वलिततेजसम्॥ १॥

महर्षि शरभङ्ग के दिवंगत हो जाने पर दण्डकारण्यवासी तपस्विगण एकत्र होकर होकर अग्नि के समान देदीप्यमान श्रीराम के पास आये।



अभिगम्य च धर्मज्ञा रामं धर्मभृतां वरम्।
ऊचुः परमधर्मज्ञमृषिसङ्घाः समाहिताः॥ २॥

धर्मात्मा ऋषियों का वह समूह धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्रीराम के पास आकर उनसे बोला—

त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः।
प्रधानश्चासि नाथश्च देवानां मघवानिव॥ ३॥

हे महारथी राम! जैसे देवताओं के राजा इन्द्र हैं उसी प्रकार आप इक्ष्वाकुवंश में प्रधान और पृथिवी के स्वामी हैं।

त्वामासाद्य महात्मानं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम्।
अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्च नः क्षन्तुमर्हसि॥ ४॥

आप जैसे महात्मा, धर्मज्ञ एवं धर्मवत्सल राजा को प्राप्त कर हम लोग याचक बनकर आपसे कुछ कहना चाहते हैं इसके लिए आप क्षमा करेंगे।

अधर्मस्तु महांस्तात भवेत्तस्य महीपतेः।
यो हरेद् बलिषड्भागं न च रक्षति पुत्रवत्॥ ५॥

हे तात! वह राजा महान् पाप का भागी होता है जो प्रजा से आय का छठा भाग कर के रूप में ले लेता है, परन्तु प्रजा का पुत्रवत् पालन नहीं करता।

युञ्जानः स्वानिव प्राणान् प्राणैरिष्टान् सुतानिव।
नित्ययुक्तः सदा रक्षन् सर्वान् विषयवासिनः॥ ६॥
प्राप्नोति शाश्वतीं राम कीर्तिं च बहुवार्षिकीम्।
ब्रह्मणः स्थानमासाद्य तत्र चापि महीयते॥ ७॥

जो राजा सदा यत्नवान् और सावधान रहकर अपने राज्य में रहनेवाली सम्पूर्ण प्रजा को अपने पुत्र और प्राणों के समान तथा प्राणों से भी बढ़कर समझता हुआ रक्षा करता है, वह राजा इस संसार में बहुव्यापिनी स्थायी कीर्ति को प्राप्त करता है और अन्तकाल में ब्रह्मलोक को पाकर वहाँ भी पूजित होता है।

यत्करोति परं धर्मं मुनिर्मूलफलाशनः।
तत्र राज्ञश्चतुर्भागः प्रजा धर्मेण रक्षतः॥ ८॥

जो राजा धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करता है उसे कन्द-मूल-फल खाकर निर्वाह करनेवाले मुनियों के पुण्य का चौथा भाग प्राप्त होता है।

सोऽयं ब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणो महान्।
त्वन्नाथोऽनाथवद्राम राक्षसैर्बाध्यते भृशम्॥ ९॥

हे राम! आप जैसे रक्षक के होते हुए भी यह ब्राह्मण-कुल वानप्रस्थियों का दल, अनाथों के समान राक्षसों के द्वारा मारा जा रहा है।

एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
हतानां राक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधा वने॥ १०॥

हे राम! आप इधर आइए और उन आत्मदर्शी तपस्वियों के मृत शरीरों को देखिए जिनको राक्षसों ने भालों की नोक से छेदकर और तलवारों से काटकर मार डाला है।

एवं वयं न मृष्यामो विप्रकारं तपस्विनाम्।
क्रियमाणं वने घोरं रक्षोभिर्भीमकर्मभिः॥ ११॥

इस घोर वन में भयंकर राक्षसों के द्वारा तपस्वियों पर जो घोर अत्याचार किये जा रहे हैं, अब वे कष्ट हमसे सहन नहीं होते।

ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः।
परिपालय नो राम वध्यमानान्निशाचरैः॥ १२॥

हे राम! आप शरणागतवत्सल हैं, अतः हम सब आपकी शरण में आये हैं। राक्षसों के द्वारा मारे जानेवाले हम लोगों की आप रक्षा करें।

एतत् श्रुत्वा तु काकुत्स्थस्तापसानां तपस्विनाम्।
इदं प्रोवाच धर्मात्मा सर्वानेव तपस्विनः॥ १३॥

ककुत्स्थकुलशिरोमणि धर्मात्मा राम उन तपस्वी मुनियों के ये वचन सुनकर उनसे बोले—

नैवमर्हथ मां वक्तुमाज्ञप्योऽहं तपस्विनाम्।
केवलेनात्मकार्येण प्रवेशष्टव्यं वनं मया॥ १४॥

आप लोगों का मुझसे प्रार्थना करना उचित नहीं। मुझे तो आप आज्ञा दें, क्योंकि मैं तो आप लोगों का आज्ञाकारी हूँ। मुझे तो आप अपने कार्य के लिए ही वन में आया हुआ समझें।

तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः॥ १५॥

मैं तपस्वियों के शत्रु राक्षसों का युद्धक्षेत्र में वध



करना चाहता हूँ। हे तपोधन ऋषि लोगो! आप मेरे और मेरे भाई लक्ष्मण के पराक्रम को देखें।[1]

दत्वाऽभयं चापि तपोधनानां
धर्मे धृतात्मा सह लक्ष्मणेन।
तपोधनैश्चापि सभाज्यवृत्तः
सुतीक्ष्णमेवाभिजगाम वीरः॥ १६॥

धर्मधुरन्धर श्रीराम ने उन तपस्वियों को अभय प्रदान किया, तदनन्तर धैर्यशील वीर राम अपने भाई लक्ष्मण तथा उन महर्षियों के साथ सुतीक्ष्णजी के आश्रम की ओर चले।

षष्ठः सर्गः (६)

सुतीक्ष्ण के आश्रम में—

स गत्वा दूरमध्वानं नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः।
ददर्शाश्रममेकान्ते चीरमालापरिष्कृतम्॥ १॥

शरभङ्ग के आश्रम से बहुत दूर जाकर और मार्ग में अनेक गहरी नदियों को पार कर श्रीराम ने एकान्त स्थल में एक आश्रम देखा जो चारों ओर पुष्प-मालाओं से अलंकृत था।

तत्र सुतीक्ष्णमासीनं तपोवृद्धमभाषत।
रामोऽहमस्मि भगवन् भवन्तं द्रष्टुमागतः॥ २॥

आश्रम में तपोवृद्ध सुतीक्ष्ण को बैठे हुए देख श्रीराम ने कहा भगवन्! मेरा नाम राम है। मैं आपके दर्शन करने आया हूँ।

स निरीक्ष्य ततो वीरं रामं धर्मभृतां वरम्।
समाश्लिष्य च बाहुभ्यामिदं वचनमब्रवीत्॥ ३॥

धार्मिकश्रेष्ठ श्रीराम को देखकर महर्षि सुतीक्ष्ण ने दोनों भुजाओं से आलिंगन करके कहा—

स्वागतं खलु ते वीर राम धर्मभृतां वर।
आश्रमोऽयं त्वयाऽऽक्रान्तः सनाथ इव साम्प्रतम्॥ ४॥

हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ वीर राम! आपका स्वागत है। आपने अपने आगमन से अनाथ के समान इस आश्रम को सनाथ कर दिया।

प्रतीक्षमाणस्त्वामेव नारोहेऽहं महायशः।
देवलोकमितो वीर देहं त्यक्त्वा महीतले॥ ५॥

हे महायशस्वी राम! आपके दर्शन की अभिलाषा से मैंने इस पार्थिव शरीर और पृथिवी को छोड़कर ब्रह्मलोक को प्रस्थान नहीं किया।

अयमेवाश्रमो राम गुणवान् रम्यतामिह।
तत् श्रुत्वा वचनं तस्य रामो वचनमब्रवीत्॥ ६॥

हे राम! तुम इसी आश्रम में रहो, क्योंकि इस आश्रम में सब प्रकार की सुविधाएँ हैं। उन महर्षि का ऐसा वचन सुनकर श्रीराम ने कहा—

एतस्मिन्नाश्रमे वासं चिरं तु न समर्थये।
तमेवमुक्त्वा वरदं रामः सन्ध्यामुपागमत्॥ ७॥

मैं इस आश्रम में बहुत दिन तक रहना उचित नहीं समझता। उस ऋषि से इस प्रकार की बातें करते हुए श्रीराम सन्ध्या करने चले गये।

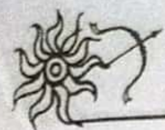
ततः शुभं तापसभोज्यमन्नं
स्वयं सुतीक्ष्णः पुरुषर्षभाभ्याम्।
ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा
सन्ध्यानिवृत्तौ रजनीमवेक्ष्य॥ ८॥

जब श्रीराम सन्ध्योपासन कर चुके तब महात्मा सुतीक्ष्ण ने सीता सहित राम-लक्ष्मण को रात्रि में खाने योग्य पवित्र फल, मूल तथा अन्नादि सत्कारपूर्वक

---

१. गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस प्रसंग का चित्रण यूँ किया है—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥



स्वयं लाकर दिये।

रामस्तु सहसौमित्रिः सुतीक्ष्णेनाभिपूजितः।
परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत॥ ९॥

सुतीक्ष्ण द्वारा सत्कृत हो सीता और लक्ष्मणसहित श्रीराम ने वह रात्रि उसी आश्रम में व्यतीत की और प्रभात होते ही जागे।

उत्थाय तु यथाकालं राघवः सह सीतया।
उपास्पृशत्सुशीतेन जलेनोत्पलगन्धिना॥ १०॥

यथा समय सीतासहित बिस्तर से उठकर श्रीराम ने कमल-गन्ध से युक्त शीतल जल से स्नान किया।

अथ तेऽग्निं सुरांश्चै वैदेही रामलक्ष्मणौ।
काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने॥ ११॥

तदुपरान्त उस तपोवन में यथासमय विधिवत् श्रीराम, लक्ष्मण और सीता ने ईश्वरोपासना और अग्निहोत्र किया।

उदयन्तं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषाः।
सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन्॥ १२॥

सूर्य को उदय होते हुए देखकर पुण्यात्मा राम और लक्ष्मण महर्षि सुतीक्ष्ण के पास जाकर नम्रतापूर्वक ये मधुर वचन बोले।

सुखोषिताः स्म भगवंस्त्वया पूज्येन पूजिताः।
अविषह्यातपो यावत्सूर्यो नातिविराजते॥ १३॥
तावदिच्छामहे गन्तुमित्युक्त्वा चरणौ मुनेः।
ववन्दे सहसौमित्रिः सीतया सह राघवः॥ १४॥

भगवन्! आप जैसे पूज्य व्यक्ति द्वारा सत्कृत होकर हम लोग सुखपूर्वक आपके आश्रम में रहे। जब तक सूर्य का ताप असह्य न हो तभी तक हम यहाँ से प्रस्थान कर देना चाहते हैं [आप हमें आज्ञा दीजिए] ऐसा कहकर तीनों ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया।

तौ संस्पृशन्तौ चरणावुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः।
गाढमालिङ्ग्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत्॥ १५॥

मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण ने प्रणाम करते हुए राम-लक्ष्मण को उठाकर उनका गाढ़-आलिंगन किया और स्नेहपूरित ये वचन कहे—

अरिष्टं गच्छ पन्थानं राम सौमित्रिणा सह।
सीतया चानया सार्धं छाययेवानुवृत्तया॥ १६॥

हे राम! आप छाया के समान आपका अनुगमन करनेवाली सीता और लक्ष्मण के साथ सुखपूर्वक यात्रा करो।

❮ सप्तमः सर्गः ❯ (७)

सीता का धर्मोपदेश—

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातं प्रस्थितं रघुनन्दनम्।
हृद्यया स्निग्धया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत्॥ १॥

महर्षि सुतीक्ष्ण से विदा हो जब श्रीराम आगे चले तब मार्ग में सीता ने अपने पति राम से ये युक्तियुक्त और स्नेहसिक्त वचन कहे—

अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान्।
निवृत्तेन तु शक्योऽयं व्यसनात्कामजादिह॥ २॥

हे राम! सूक्ष्म रीति से विचार करने पर आपको जान पड़ेगा कि (सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओं और राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा कर) आप अधर्म का संचय कर रहे हैं। आप जिस कामज व्यसन में प्रवृत्त हो रहे हैं उससे निवृत्त होने पर ही आप अधर्म के सञ्चयरूपी दोष से बच सकते हैं।

त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवन्त्युत।
मिथ्यावाक्यं परमकं तस्माद् गुरुतरावुभौ।
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता॥ ३॥

कामज व्यसन तीन प्रकार के माने गये हैं। उनमें मिथ्या भाषण करना भयङ्कर पाप है तथा शेष दो—पर-स्त्रीगमन और अकारण प्राणियों की हिंसा—उससे भी बढ़कर हैं।



मिथ्या वाक्यं न ते भूतं न भविष्यति राघव।
कुतोऽभिलषणं स्त्रीणां परेषां धर्मनाशनम्॥ ४॥

हे राघव! मिथ्या भाषण तो न कभी आपने किया और न कभी आगे करने की आशा है। धर्मनाशक पर-स्त्री संसर्ग की तो चर्चा ही आपमें व्यर्थ है।

तृतीयं यदिदं रौद्रं परप्राणाभिहिंसनम्।
निर्वैरं क्रियते मोहात्तच्च ते समुपस्थितम्॥ ५॥
प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम्।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम्॥ ६॥

परन्तु तीसरा भयानक दोष, अर्थात् मोहवश निरपराध प्राणियों की हिंसा आपमें उपस्थित होनेवाला है, क्योंकि हे वीर! आप दण्डकारण्यवासी ऋषियों की रक्षा के लिए संग्राम में राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

एतन्निमित्तं च वनं दण्डका इति विश्रुतम्।
प्रस्थितस्त्वं सह भ्रात्रा धृतबाणशरासनः॥ ७॥

उसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए आप धनुषबाण धारण करके लक्ष्मणसहित दण्डक नामक प्रसिद्ध वन में जा रहे हैं।

नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान् प्रति।
स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां न शिक्षये॥ ८॥

हे वीर! मुझे आपका दण्डक वन जाना अच्छा नहीं लगता। मैं आपको शिक्षा नहीं देती प्रत्युत स्नेह एवं सम्मान के कारण आपको स्मरण करा रही हूँ।

अपराधं विना हन्तुं लोकान् वीर न कामये।
क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्॥ ९॥
धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम्।
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व
च क्षात्रं तपः क्व च॥ १०॥

हे वीर! बिना अपराध लोगों के वध को मैं उचित नहीं समझती। शान्त अन्तःकरणवाले वीर क्षत्रियों का वन में धनुष धारण से इतना ही प्रयोजन है कि वे दुःखी लोगों की रक्षा करें (निरपराध जीवों की हिंसा नहीं) कहाँ शस्त्र और कहाँ वन? कहाँ क्षात्रधर्म और कहाँ तपस्या—दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं।

तदार्य कलुषा बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात्।
पुनर्गत्वा त्वयोध्यायां क्षात्रधर्मं चरिष्यसि॥ ११॥

हे आर्य! शस्त्र धारण करने से बुद्धि मलिन हो जाती है। (अतः आप वन में शस्त्र द्वारा राक्षसों के वध का विचार त्याग दीजिए।) जब आप अयोध्या लौट जायें तब पुनः क्षात्रधर्म का पालन करना।

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्॥ १२॥

धर्म से धन की प्राप्ति होती है, धर्म से ही सुख की प्राप्ति होती है। अधिक क्या धर्म से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। संसार में धर्म ही सार है।

नित्यं शुचिमतिः सौम्य चर धर्मं तपोवने।
सर्वं हि विदितं तुभ्यं त्रैलोक्यमपि तत्त्वतः॥ १३॥

हे सौम्य! आप जब तक तपोवन में हैं तब तक विशुद्ध मन से तपस्वियों जैसा धर्मानुष्ठान करें। आपको तीनों लोकों के धर्म का यथार्थ ज्ञान है ही। (मैं आपको क्या बता सकती हूँ।)

स्त्रीचापलादेतदुदाहृतं मे
धर्मं च वक्तुं तव कः समर्थः।
विचार्य बुद्ध्या तु सहानुजेन
यद्रोचते तत्कुरु माचिरेण॥ १४॥

मैंने स्त्रीस्वभाव सुलभ चपलतावश ये सब बातें आपसे कही हैं। भला आपको धर्मोपदेश कौन दे सकता है? आप अपने भाई लक्ष्मण के साथ इन बातों पर विचार करें, फिर जो उचित प्रतीत हो वही अविलम्ब कीजिए।



◀ अष्टमः सर्गः ▶ (८)

श्रीराम द्वारा राक्षस-वध का समर्थन—

वाक्यमेतत्तु वैदेह्या व्याहृतं भर्तृभक्तया।
श्रुत्वा धर्मे स्थितो रामः प्रत्युवाचाथ मैथिलीम्॥ १॥

पति-प्रेमवश सीताजी द्वारा कही बातों को सुन धर्म में स्थित श्रीराम ने जनकनन्दिनी सीताजी से कहा—

हितमुक्तं त्वया देवि स्निग्धया सदृशं वचः।
कुलं व्यपदिशन्त्या च धर्मज्ञे जनकात्मजे॥ २॥

हे धर्म को जाननेवाली जनककुमारी देवी सीते! तुमने स्नेहपूर्वक अपने उच्च कुलोत्पन्न होने की सूचक जो हित की बातें कही हैं, वे तुम्हारे कहने योग्य ही हैं।

किन्तु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति॥ ३॥

हे देवि! मैं क्या कहूँ? अभी तुम यह कह चुकी हो कि क्षत्रिय लोग धनुष-बाण इसलिए धारण करते हैं, जिससे किसी दुःखिया का आर्तनाद सुनाई न पड़े।

सर्वैरेतैः समागम्य वागियं समुदाहृता।
रक्ष नस्त्वं सह भ्रात्रा त्वन्नाथा हि वयं वने॥ ४॥

वनवासी सभी तपस्वियों ने स्वयं मेरे पास आकर एक स्वर में यह कहा था—हे राम! अपने भाई लक्ष्मणसहित आप हम लोगों की रक्षा कीजिए, क्योंकि इस वन में आप ही हमारे रक्षक हैं।

मया चैतद्वचः श्रुत्वा कार्त्स्न्येन परिपालनम्।
ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे॥ ५॥

हे जनकदुलारी! दण्डक वन में रहनेवाले ऋषियों की यह बात सुन मैंने सब प्रकार से उनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा की है।

संश्रुत्य न च शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्।
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा॥ ६॥

मैंने ऋषियों के समक्ष जो प्रतिज्ञा की है अपने जीते-जी मैं उसे अन्यथा नहीं कर सकता, क्योंकि सत्य मुझे सदा प्रिय रहा है।

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥ ७॥

हे सीते! मैं अपने प्राण त्याग सकता हूँ लक्ष्मण-सहित तुम्हें छोड़ सकता हूँ, परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को, विशेषकर उस प्रतिज्ञा को जो ब्राह्मणों के समक्ष की है—कभी नहीं छोड़ सकता।

तदवश्यं मया कार्यमृषीणां परिपालनम्।
अनुक्तेनापि वैदेहि प्रतिज्ञाय तु किं पुनः॥ ८॥

हे वैदेही! ऋषियों के बिना कहे ही मुझे उनकी रक्षा करनी चाहिए, फिर मैंने तो उनकी रक्षा की प्रतिज्ञा की है।

मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वयाऽनघे।
परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशिष्यते॥ ९॥

हे निष्पाप सीते! तुमने स्नेह एवं सौहार्द से जो भी बातें कही हैं उनसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। (तुम्हारे उपदेश में मेरे प्रति प्रेम झलकता है), क्योंकि अप्रिय मनुष्य को कोई भी उपदेश नहीं करता।

सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव चात्मनः।
सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥ १०॥

हे सीते! तुमने अपने तथा अपने वंश की मर्यादा के अनुकूल उचित ही कहा है। तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। (अतः तुम्हें मुझे उपदेश देने का अधिकार है।)

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
सीतां प्रियां मैथिलीराजपुत्रीम्।
रामो धनुष्मान् सह लक्ष्मणेन
जगाम रम्याणि तपोवनानि॥ ११॥

जनकदुलारी प्रिया सीता से ऐसा कहकर महात्मा राम हाथ में धनुष लेकर लक्ष्मण के साथ उस रमणीय तपोवन में आगे चले गये।



ते गत्वा दूरमध्वानं ददर्शाश्रममण्डलम्।
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्म्या लक्ष्म्या समावृतम्॥ १२॥

बहुत दूर जाने के पश्चात् उन्होंने एक आश्रममण्डल देखा जिसमें कुशा और चीर फैले हुए थे। उसमें ब्राह्मण निवास करते थे और वह अलौकिक शोभा से युक्त था।

प्रविश्य सह वैदेह्या लक्ष्मणेन च राघवः।
उवास मुनिभिः सर्वैः पूज्यमानो महायशाः॥ १३॥

श्रीराम लक्ष्मण और सीतासहित उस आश्रम-मण्डल में प्रविष्ट हुए। आश्रमवासी सभी मुनियों द्वारा सत्कृत होकर महायशस्वी श्रीराम ने वह रात्रि वहीं व्यतीत की।

उषित्वा तु सुखं तत्र पूज्यमानो महर्षिभिः।
जगाम चाश्रमांस्तेषां पर्यायेण तपस्विनाम्॥ १४॥

कुछ काल तक यहाँ सुखपूर्वक रहकर तथा मुनियों द्वारा सत्कृत होकर श्रीराम बारी-बारी से सब ऋषियों के आश्रमों में रहने लगे।

क्वचित्परिदशान् मासानेकं संवत्सरं क्वचित्।
एवं संवसतस्तस्य ययुः संवत्सरा दश॥ १५॥

कहीं वे दस मास निवास करते कहीं एक वर्ष। इस प्रकार सुखपूर्वक निवास करते हुए उनके दस वर्ष व्यतीत हो गये।

सुतीक्ष्णस्याश्रमं श्रीमान्पुनरेवाजगाम ह।
तत्रापि न्यवसद्रामः किञ्चित्कालमरिन्दमः॥ १६॥

तदनन्तर श्रीराम पुनः महर्षि सुतीक्ष्ण के आश्रम में लौट आये और वहाँ भी उन्होंने कुछ समय तक निवास किया।

आश्रमस्थो काकुत्स्थः सुतीक्ष्णमिदमब्रवीत्।
कुत्राश्रमं पुण्यमृषिरगस्त्यस्य तपोधनः॥ १७॥

आश्रम में रहते हुए एक दिन रघुकुलभूषण श्रीराम ने महर्षि सुतीक्ष्ण से पूछा—तपोधन महर्षि अगस्त्य का आश्रम इस रमणीक वन में कहाँ है?

इति रामस्य स मुनिः श्रुत्वा धर्मात्मनो वचः।
सुतीक्ष्णः प्रत्युवाच तं यत्रागस्त्यो महामुनिः॥ १८॥

मुनिवर सुतीक्ष्ण ने महात्मा राम का यह वचन सुन उन्हें वह स्थान बताया जहाँ महर्षि अगस्त्यजी रहते थे।

रामोऽथ मुनिमामन्त्र्य सह भ्रात्राऽभिवाद्य च।
प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्य सानुजः सीतया सह॥ १९॥

महर्षि से आश्रम का पता पूछ उनसे विदा हो तथा लक्ष्मणसहित उन्हें प्रणाम कर श्रीराम लक्ष्मण और सीतासहित महर्षि अगस्त्य के आश्रम की ओर प्रस्थानित हुए।

पश्यन्वनानि रम्याणि पर्वतांश्चाभ्रसन्निभान्।
सरांसि सरितश्चैव पथि मार्गवशानुगान्॥ २०॥

सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेन गत्वा तेन पथा सुखम्।
इदं परमसंहृष्टो वाक्यं लक्ष्मणमब्रवीत्॥ २१॥

महर्षि सुतीक्ष्ण द्वारा बताये हुए मार्ग को लक्ष्य करके श्रीराम मार्ग में अनेक रमणीक वनों, मेघ के तुल्य पर्वतों, नदियों और सरोवरों को देखते जाते थे। चलते-चलते हर्षित हो श्रीराम ने लक्ष्मणजी से कहा—

आश्रमो नातिदूरस्थो महर्षेर्भावितात्मनः।
अगस्त्य इति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा॥ २२॥

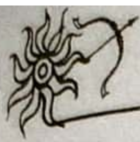
जो अपने कर्मों से लोक में अगस्त्य[१] के नाम से विख्यात हैं उन शुद्धचित्त महर्षि अगस्त्य का आश्रम अब अधिक दूर नहीं है।

आश्रमो दृश्यते तस्य परिश्रान्तश्रमापहः।
प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः॥ २३॥

परिश्रान्त यात्रियों की थकान को दूर करनेवाला यह महर्षि अगस्त्य का ही आश्रम जान पड़ता है। देखो अग्निहोत्र का धुआँ वन में छाया हुआ है। जहाँ-तहाँ वृक्षों की डालियों पर चीर वस्त्र सूखने के लिए डाले हुए हैं और पुष्पमालाएँ लटका कर आश्रम की सजावट की गई है।

---

१. अगस-दोषों को अस्त कर देनेवाला, लोगों की आधि-व्याधियों को दूर करनेवाला।



अस्मानभिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति।
शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो॥ २४॥

हे समर्थ सौम्य लक्ष्मण! जब हम लोग उनके आश्रम में पहुँचेंगे तब वे हमारा अवश्य ही कल्याण करेंगे। अब मैं वनवास का शेष समय महर्षि अगस्त्य के आश्रम में ही बिताऊँगा।

आगताः स्माश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सीतया सह॥ २५॥

हे लक्ष्मण! लो अब हम आश्रम में आ पहुँचे हैं। अब तुम आगे जाकर उन्हें सीता सहित मेरे आगमन की सूचना दो।

◀ नवमः सर्गः ▶ (९)

अगस्त्य से भेंट और पञ्चवटी को प्रस्थान—

स प्रविश्याश्रमपदं लक्ष्मणो राघवानुजः।
अगस्त्यशिष्यमासाद्य वाक्यमेतदुवाच ह॥ १॥

श्रीराम के अनुज भ्राता लक्ष्मण महर्षि अगस्त्य के आश्रम में प्रविष्ट होकर उनके एक शिष्य से मिलकर बोले—

रामः प्राप्तो मुनिं द्रष्टुं भर्यया सह सीतया।
लक्ष्मणो नाम तस्याहं भ्राता त्ववरजो हितः॥ २॥

श्रीराम अपनी धर्मपत्नी सीता सहित महर्षि के दर्शन करने आये हैं। मैं श्रीराम के हित में संलग्न उनका छोटा भाई हूँ।

ते वयं वनमत्युग्रं प्रविष्टाः पितृशासनात्।
द्रष्टुमिच्छामहे सर्वे भगवन्तं निवेद्यताम्॥ ३॥

हम पिता की आज्ञा से इस भयंकर वन में आये हैं। हम सभी लोग उनका दर्शन करने चाहते हैं। आप भगवान् अगस्त्य को हमारे आगमन की सूचना दीजिए।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणस्य तपोधनः।
तथेत्युक्त्वाऽग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम्॥ ४॥

लक्ष्मणजी कि बात सुनकर वह शिष्य ''बहुत अच्छा''—ऐसा कहकर महर्षि अगस्त्य से निवेदन करने के लिए अग्निशाला में प्रविष्ट हुआ।

स प्रविश्य मुनिश्रेष्ठं तपसा दुष्प्रधर्षणम्।
कृताञ्जलिरुवाचेदं रामागमनमञ्जसा॥ ५॥

उस शिष्य ने यज्ञशाला में प्रविष्ट होकर हाथ जोड़कर ज्ञानसम्पन्न मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से श्रीराम के आगमन का समाचार कहा।

ततः शिष्यादुपश्रुत्य प्राप्तं रामं सलक्ष्मणम्।
वैदेहीं च महाभागामिदं वचनमब्रवीत्॥ ६॥

शिष्य के मुख से श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी के आगमन का समाचार सुनकर अगस्त्यजी बोले—

दिष्ट्या रामश्चिरस्याद्य द्रष्टुं मां समुपागतः।
मनसा काङ्क्षितं ह्यस्य मयाप्यागमनं प्रति॥ ७॥

बड़े सौभाग्य की बात है कि बहुत दिनों के पश्चात् श्रीराम आज मुझसे मिलने आये हैं। मेरे मन में भी उनसे मिलने की बड़ी अभिलाषा थी।

गम्यतां सत्कृतो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः।
प्रवेश्यतां समीपं मे किं चासौ न प्रवेशितः॥ ८॥

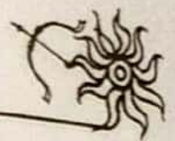
अच्छा, तुम जाओ और सत्कारपूर्वक लक्ष्मण तथा सीता सहित राम को मेरे पास लिवा लाओ। तुम उन्हें पहले मेरे पास क्यों नहीं लिवा लाये?

ततो निष्क्रम्य स शीघ्रं गत्वाऽश्रमद्वारं तथा।
प्रवेशयद्यथान्यायं सत्कारार्हं सुसत्कृतम्॥ ९॥

तब वह शिष्य शीघ्रता से बाहर निकला और द्वार पर जाकर यथाविधि उन सबका सत्कार कर उन्हें आश्रम में ले गया।

तत्र गत्वामहाबाहुरगस्त्यं सूर्यवर्चसम्।
जग्राह परमप्रीतस्तस्य पादौ परन्तपः॥ १०॥

आश्रम में प्रविष्ट होकर महाबाहु श्रीराम ने सूर्य



के समान देदीप्यमान ऋषि के चरणों को छूकर उन्हें प्रणाम किया।

प्रतिजग्राह काकुत्स्थमर्चयित्वाऽऽसनोदकैः।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च ह्यास्यतामिति चाब्रवीत्॥ ११॥

महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम को अतिथि मानकर उनका स्वागत किया। उन्हें बैठने के लिए आसन और पैर धोने के लिए जल दिया, तदनन्तर उनकी कुशल-क्षेम पूछकर कहा कि बैठिए।

प्रथमं चोपविश्याथ धर्मज्ञो मुनिपुङ्गवः।
उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम्॥ १२॥

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ महर्षि अगस्त्य हाथ जोड़कर आसन पर बैठे हुए श्रीराम से बोले—

अपूजयित्वा काकुत्स्थ तपस्विनामुपागतम्।
भुङ्क्ते यः स परे लोके स्वानि मांसानि खादति॥ १३॥

हे रघुकुलशिरोमणि राम! जो मुनष्य आये हुए तपस्वियों एवं अतिथियों का सत्कार किये बिना, उन्हें भोजन खिलाये बिना स्वयं भोजन करता है वह परलोक में अपना मांस आप ही खाता है।

राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान् प्राप्तः प्रियातिथिः॥ १४॥

आप तो भूमण्डल के राजा, धर्मशील और महारथी हैं तथा विशिष्ट एवं प्रिय अतिथि के रूप में मेरे यहाँ आये हैं।

एवमुक्त्वा फलैर्मूलैः पुष्पैरन्यैश्च राघवम्।
पूजयित्वा यथाकामं पुनरेवाब्रवीद्वचः॥ १५॥

ऐसा कहकर फल, मूल, पुष्प तथा अन्य पदार्थों के द्वारा अपनी इच्छानुसार राम का आतिथ्य कर अगस्त्यजी उनसे कहने लगे—

इदं दिव्यं महच्चापं हेमरत्नविभूषितम्।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा॥ १६॥

हे पुरुषसिंह! विश्वकर्मा द्वारा निर्मित, स्वर्ण और रत्नों से विभूषित यह दिव्य तथा विशाल वैष्णव नामक धनुष है।

अमोघः सूर्यसङ्काशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः।
दत्तो मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षयसायकौ॥ १७॥

यह सूर्य के समान देदीप्यमान और अमोघ (जो कभी खाली न जाये) बाण है, जो ब्रह्माजी ने मुझे दिया था और ये इन्द्र द्वारा प्रदत्त तरकश हैं जिनके बाण कभी समाप्त नहीं होते।

सम्पूर्णौ निशितैर्बाणैर्ज्वलद्भिरिव पावकैः।
महारजतकोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः॥ १८॥

इन तरकशों में अग्नि के समान ज्वाला वमन करनेवाले तीव्र बाण भरे हुए हैं। यह स्वर्ण से विभूषित तलवार है जिसका म्यान भी सोने का बना हुआ है।

तद्धनुस्तौ च तूणीरौ शरं खड्ग च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा॥ १९॥

हे सम्मान-योग्य राम! इस धनुष, तरकश बाण तथा तलवार को संग्राम में अपनी विजय के लिए ऐसे ही धारण करो जैसे इन्द्र ने वज्र को धारण किया था।

गृहीत्वा तांस्तदा रामः प्रत्युवाच महामुनिम्।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्ये मे परितुष्यति॥ २०॥

उन अस्त्र-शस्त्रों को ग्रहण कर श्रीराम ने महामुनि अगस्त्य से कहा—मैं अपने को धन्य एवं अनुगृहीत समझता हूँ कि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं।

प्रभो व्यादिश मे देशं सोदकं बहुकाननम्।
यत्राश्रमपदं कृत्वा वसेयं निरतः सुखम्॥ २१॥

हे प्रभो! अब आप मुझे कोई ऐसा स्थान बताइए जहाँ जल का कष्ट न हो, जो हरे-भरे वृक्षों से युक्त हो, जहाँ आश्रम बनाकर मैं सुखपूर्वक रह सकूँ।

ततोऽब्रवीन् मुनिश्रेष्ठः श्रुत्वा रामस्य तद्वचः।
ध्यात्वा मुहूर्तं धर्मात्मा धीरो धीरतरं वचः॥ २२॥

श्रीराम के वचनों को सुनकर धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी थोड़ी देर सोचकर यह सुनिश्चित वचन बोले—

इतो द्वियोजने तात बहुमूलफलोदकः।
देशो बहुमृगः श्रीमान् पञ्चवट्यभिविश्रुतः॥ २३॥



हे तात! यहाँ से दो योजन की दूरी पर अनेक प्रकार के फल-फूलों से युक्त, जलाशयों से परिपूर्ण और मृगों से सेवित पञ्चवटी नाम का प्रसिद्ध स्थान है।

तत्र गत्वाऽऽश्रमपदं कृत्वा सौमित्रिणा सह।
रंस्यसे त्वं पितुर्वाक्यं यथोक्तमनुपालयन्॥ २४॥

तुम लक्ष्मण सहित वहाँ जाओ और वहाँ आश्रम निर्मित कर अपने पिता के वचन का यथाविधि पालन करते हुए वहाँ सुखपूर्वक निवास करो।

अगस्त्येनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिणा सह।
सत्कृत्यामन्त्रयामास तमृषिं सत्यवादिनम्॥ २५॥

महर्षि अगस्त्य के ऐसा कहने पर श्रीराम ने लक्ष्मण सहित उस सत्यवादी ऋषि का सत्कार कर उनसे आगे जाने के लिए विदा माँगी।

तौ तु तेनाभ्यनुज्ञातौ कृतपादाभिवादनौ।
तदाश्रमात्पञ्चवटीं जग्मतुः सह सीतया॥ २६॥

अगस्त्यजी की अनुमति प्राप्त कर दोनों राजकुमारों ने ऋषि के चरणों में प्रणाम किया और सीता को साथ ले वे पञ्चवटी की ओर प्रस्थानित हुए।

◀ दशमः सर्गः ▶ (१०)

जटायु से भेंट और पञ्चवटी में निवास—

अथ पञ्चवटीं गच्छन्नन्तरा रघुनन्दनः।
आससाद महाकायं गृध्रं भीमपराक्रमम्॥ १॥

पञ्चवटी की ओर जाते हुए राम ने मार्ग में भीषण पराक्रमवाले एवं विशालकाय गृध्रराज [गृध्रकूट के भूतपर्व राजा] जटायु[१] को देखा।

तं दृष्ट्वा तौ महाभागौ वनस्थं रामलक्ष्मणौ।
मेनाते राक्षसं पक्षिं ब्रुवाणौ को भवानिति॥ २॥

महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण वनवासी उस जटायु को देखकर उसे राक्षसों के पक्ष का समर्थन करनेवाला राक्षस ही समझ कर उससे पूछने लगे—तुम कौन हो?

स तौ मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः॥ ३॥

गृध्रराज जटायु ने अत्यन्त सौजन्य[२] के साथ मधुर शब्दों में श्रीराम को प्रसन्न करते हुए उत्तर दिया—हे

१. जटायु के सम्बन्ध में लोगों को बहुत भ्रान्ति है। लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि जटायु एक गीध था, परन्तु यह बात सर्वथा असत्य है। जटायु अपने आपको "**वयस्यं पितुरात्मनः**" दशरथ का मित्र बताता है। इतना ही नहीं जटायु के लिए आदि कवि ने आर्य शब्द का भी प्रयोग किया है। जब रावण सीता को हर कर ले जा रहा था तब सीता जटायु को देखकर कहती है—"**जटायो पश्य मामार्य ह्रियमानमनाथवत्**"—हे आर्य जटायु! देखो यह राक्षस मुझे अनाथ की भाँति उठाकर ले जा रहा है। आर्य विशेषण से ही यह बात सिद्ध है कि जटायु पक्षी नहीं था।

प्रश्न हो सकता है कि रामायण में उन्हें कहीं-कहीं पक्षी कहा गया है इसका क्या कारण है? इस शंका का समाधान 'ताण्ड्य ब्राह्मण' से हो जाता है। वहाँ कहा है—

ये वै विद्वांसस्ते पक्षिणो येऽविद्वांसस्तेऽपक्षाः॥
—ता० ब्रा० १४।१।१३

जो विद्वान् होते हैं वे पक्षी और जो अविद्वान्=मूर्ख होते हैं वे पक्षरहित।

जटायु ने राजपाट अपने पुत्रों को सौंप दिया था और वे परमात्मा की प्राप्ति के लिए संलग्न होकर वानप्रस्थियों का-सा जीवन बिता रहे थे, अतः उन्हें पक्षी कहना उचित ही है। ज्ञान और कर्म उनके दो पक्ष थे जिनसे उड़कर वे परमात्म-प्राप्ति का प्रयत्न कर रहे थे।

वानप्रस्थियों की भाँति उन्होंने अपनी जटाएँ बढ़ाई हुई थीं, इसलिए वे जटायु थे।

२. क्या ये विशेषण आकाश में उड़नेवाले पक्षी की वाणी में घट सकते हैं? कभी नहीं।



वत्स! मुझे अपने पिता का मित्र जानो।

स तं पितृसखं बुद्ध्वा पूजयामास राघवः।
स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च॥ ४॥

श्रीराम ने उन्हें अपने पिता का मित्र जानकर उनका सत्कार किया, फिर उनसे उनका कुल और नाम पूछा।

रामस्य वचनं श्रुत्वा स्वकुलं जन्म चात्मनः।
आचचक्षे द्विजश्रेष्ठो[१] यथावत् परिपृच्छतः॥ ५॥

श्रीराम की बात सुनकर क्षत्रियश्रेष्ठ जटायु ने अपना कुल, जन्म और नाम आदि यथावत् बतलाया। [उसने कहा—]

जटायुरिति मां विद्धि श्येनीपुत्रमरिन्दम।
सोऽहं वाससहायस्ते भविष्यामि यदीच्छसि॥ ६॥

हे शत्रुसंहारक! मेरा नाम जटायु है और मैं श्येनी का पुत्र हूँ। यदि आप चाहेंगे तो वनवास में मैं आपकी सहायता करूँगा।

इदं दुर्गं हि कान्तारं मृगराक्षससेवितम्।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे॥ ७॥

यह वन बड़ा दुर्गम है। इसमें अनेक सिंह, वन्य-पशु और राक्षस रहते हैं। हे तात! जब तुम लक्ष्मणसहित आश्रम से कहीं दूर चले जाओगे तब मैं सीता की रक्षा किया करूँगा।

जटायुषं तं प्रतिपूज्य राघवो
सहैव तेनातिबलेन पक्षिणा।
जगाम तां पञ्चवटीं सलक्ष्मणो
रिपून् दिधक्षन् शलभानिवानलः॥ ८॥

जटायु का स्वागत कर और सीता की रक्षार्थ स्वपक्ष समर्थक, ज्ञानसम्पन्न उस जटायु को अपने साथ ही लेकर लक्ष्मणसहित श्रीराम जैसे अग्नि पतङ्गों को भस्म करती है उसी प्रकार राक्षसों को भस्म-सा करते हुए सुप्रसिद्ध पञ्चवटी की ओर चले।

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुतम्।
उवाच भ्रातरं रामः सौमित्रिं दीप्ततेजसम्॥ ९॥

सर्प और हिंसक वन-जन्तुओं से परिपूर्ण उस पञ्चवटी में पहुँच कर श्रीराम ने अपने तेजस्वी भाई लक्ष्मण से कहा—

आगताः स्म यथोद्दिष्टममुं देशं महर्षिणा।
अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितपादपः॥ १०॥

हे सौम्य! हम महर्षि अगस्त्य के बताये स्थान पर पहुँच गये हैं। यही पञ्चवटी है, जहाँ पुष्पित वृक्षों से भरा हुआ वन दिखाई दे रहा है।

सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि।
आश्रमः कतरस्मिन्नो देशे भवति सम्मतः॥ ११॥

आश्रम बनाने के लिए उपयुक्त स्थान का चयन करने में तुम निपुण हो, अतः इस वन में दृष्टि फैलाकर देखो कि हम लोगों के आश्रम के लिए कौन-सा स्थान उपयुक्त रहेगा?

रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण।
तादृशो दृश्यतां देशः सन्निकृष्टजलाशयः॥ १२॥

हे लक्ष्मण! स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ सीताजी, तुम और मैं—सभी सुखपूर्वक रह सकें और जल भी समीप हो।

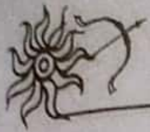
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

श्रीराम का ऐसा वचन सुन लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर सीताजी के समक्ष श्रीराम से कहा—

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥ १४॥

---

१. इस श्लोक में जटायु को द्विजश्रेष्ठ कहा गया है। ''यह आग्रह कि द्विज तो पक्षी को भी कहते हैं, अतः जटायु पक्षी ही था''—ठीक नहीं। लोक में गृध्र को तो निकृष्ट पक्षी माना गया है। वह मुर्दों का माँस खाता है, अतः द्विजश्रेष्ठ विशेषण जटायु को पक्षी नहीं, अपितु श्रेष्ठ क्षत्रिय सिद्ध कर रहा है। द्विज का अर्थ होता है ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। जटायु राजा था, अतः वे क्षत्रिय श्रेष्ठ थे।



हे राम! मैं तो आपका सार्वकालिक दास हूँ। आप स्वयं ही कोई चुनकर मुझे वहाँ आश्रम बनाने की आज्ञा दीजिए।

सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महात्मनः।
विमृशन् रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम्॥ १५॥

लक्ष्मणजी के वचन सुन श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचकर और खोजने के पश्चात् एक रमणीय स्थान चुना जहाँ सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं।

स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि।
हस्तौ गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ १६॥

आश्रम बनाने के लिए उपयुक्त स्थान पसन्द कर श्रीराम अपने हाथ से लक्ष्मण के दोनों हाथ पकड़कर बोले—

अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः।
इहाश्रमपदं सौम्य यथावत्कर्तुमर्हसि॥ १७॥

हे सौम्य! यह स्थान समतल है और फूलवाले वृक्षों से परिपूर्ण तथा रमणीय है, अतः इस स्थान पर तुम सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं से युक्त आश्रम का निर्माण करो।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः॥ १८॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर महाबली, शत्रुञ्जय लक्ष्मण ने बहुत शीघ्र ही वहाँ पर आश्रम का निर्माण करना आरम्भ कर दिया।

पर्णशालां सुविपुलां तत्र संघातमृत्तिकाम्।
सुस्तम्भां मस्करैर्दीर्घैः कृतवंशां सुशोभनाम्॥ १९॥

मिट्टी की दीवारें खड़ी करके और लम्बे-लम्बे बाँसों के खम्बे लगाकर श्रीलक्ष्मणजी ने वह विस्तृत एवं शोभायमान पर्णशाला बनाई।

ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि।
दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम्॥ २०॥

तदनन्तर श्रीलक्ष्मणजी ने उस कुटिया को पुष्पों से समलंकृत कर और कुटिया में सुख-शान्ति के सभी उपाय कर, उस नवनिर्मित पर्णशाला को श्रीराम को दिखाया।

स तं दृष्ट्वा कृतं सौम्यमाश्रमं सह सीतया।
राघवः पर्णशालायां हर्षमाहारयद् भृशम्॥ २१॥

सीतासहित, श्रीराम ने लक्ष्मण द्वारा निर्मित उस रमणीय पर्णशाला को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की।

सुसंहृष्टः परिष्वज्य बाहुभ्यां लक्ष्मणं तदा।
अतिस्निग्धं च गाढं च वचनं चेदमब्रवीत्॥ २२॥

प्रसन्न होते हुए श्रीराम ने अपने भ्राता लक्ष्मण का विशाल भुजाओं से प्रेमपूर्वक गाढ़ालिंगन किया और यह बोले—

प्रीतोऽस्मि ते महत्कर्म त्वया कृतमिदं प्रभो।
प्रदेयो यन्निमित्तं ते परिष्वङ्गो मया कृतः॥ २३॥

हे लक्ष्मण! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने यह बहुत अच्छा कार्य किया है। इसका तुम्हें पुरस्कार भी मिलना चाहिए। उस पुरस्कार के बदले मैंने तुम्हें अपने हृदय से लगा लिया है।

एवं लक्ष्मणमुक्त्वा तु राघवो लक्ष्मिवर्धनः।
तस्मिन् देशे बहुफले न्यवसत्ससुखं वशी॥ २४॥

शान्तात्मा, लक्ष्मिवर्धन श्रीराम लक्ष्मणजी से ऐसा कहकर उस बहुत फल-फूल युक्त प्रदेश में सुखपूर्वक निवास करने लगे।

≺ एकादश सर्गः ≻ (११)

हेमन्त ऋतु वर्णन—

वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः।
शरद्यपाये हेमन्त ऋतुरिष्टः प्रवर्तते॥ १॥

महात्मा राम ने वहाँ सुखपूर्वक निवास करते हुए शरद् ऋतु बिता दी। तत्पश्चात् सर्वजन-प्रिय हेमन्त ऋतु आरम्भ हुई।



स कदाचित् प्रभातायां शर्वर्यां रघुनन्दनः।
प्रययावभिषेकार्थं रम्यां गोदावरीं नदीम्॥ २॥

एक दिन जब रात्रि व्यतीत होकर प्रात:काल हुआ तब श्रीराम स्नान करने के लिए रमणीय गोदावरी नदी पर गये।

प्रह्वः कलशहस्तस्तं सीतया सह वीर्यवान्।
पृष्ठतोऽनुव्रजन् भ्राता सौमित्रिरिदमब्रवीत्॥ ३॥

पराक्रमी लक्ष्मण हाथ में कलश लेकर सीता के साथ श्रीराम के पीछे चलते हुए उनसे बोले—

अयं स कालः संप्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः॥ ४॥

हे प्रियभाषी राम! सौभाग्य से आपका प्रिय हेमन्त ऋतु आ गया है। इस रमणीय ऋतु के आगमन से पके हुए अन्नादि से यह संवत्सर अलंकृत-सा जान पड़ता है।

नीहारपरुषो लोकः पृथिवी सस्यशालिनी।
जलान्यनुपभोग्यानि सुभगो हव्यवाहनः॥ ५॥

इस ऋतु में सर्दी के कारण लोगों के शरीर रूक्ष हो गये हैं। पृथिवी अन्न से हरी-भरी दीख पड़ती है, पानी छूने को जी नहीं चाहता और अग्नि से तापने को सभी का जी चाहता है।

नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्य पितृदेवताः।
कृताग्रयणकाः[१] काले सन्तो विगतकल्मषाः॥ ६॥

इस समय सज्जन लोग नवसस्येष्टि यज्ञ[२]पूर्वक देव=विद्वान्, पितृ=माता-पिता तथा सम्बन्धियों का नवान्न से सत्कार करके निष्पाप[३] हो गये हैं।

प्राज्यकामा जनपदाः सम्पन्नतरगोरसाः।
विचरन्ति महीपाला यात्रास्था विजिगीषवः॥ ७॥

इस समय जनपद के सभी लोगों की कामनाएँ (वस्तुओं की प्रचुरता के कारण) पूर्ण हो जाती हैं। अन्य ऋतुओं की अपेक्षा इस ऋतु में गोरस=दूध-दही भी अधिक होता है। विजय के इच्छुक राजा लोग भी इन्हीं दिनों में रण-यात्रा करते हैं।

मृदुसूर्याः सनीहाराः पटुशीताः समारुताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्॥ ८॥

इस ऋतु में सूर्य में पहले जैसे गर्मी नहीं रहती, अतः सूर्य की किरणें सहने योग्य हो जाती हैं। कुहरा पड़ने तथा शीतल वायु चलने से शीत प्रबल हो जाता है। वन में रहनेवाले लोग शीत के कारण इधर-उधर नहीं घूमते, अतः वन सूने-से जान पड़ते हैं।

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥ ९॥

चन्द्रमा का सौभाग्य सूर्य ने ले लिया है। (जैसे पहले लोग चन्द्रमा को प्रेम करते थे जैसे अब सूर्य से प्रेम करते है।) जैसे मुँह के श्वास के दर्पण धुँधला पड़ जाता है वैसे ही चन्द्रमा का प्रकाश भी मध्यम पड़ गया है। कुहरे के कारण सूर्यमण्डल भी धुँधला पड़ गया है।

ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।
सीतेव चातपश्यामा लक्ष्यते न तु शोभते॥ १०॥

कुहरे से मलिन होने के कारण चन्द्रमा की चाँदनी अब पूर्णिमा की रात्रि में भी नहीं छिटकती जैसे धूप से काली पड़ी सीताजी पहचानी तो जाती हैं, परन्तु शोभित नहीं होतीं उसी प्रकार चन्द्रमा का धुँधला-सा प्रकाश ही दीख पड़ता है।

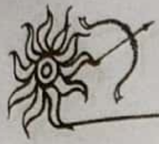
प्रकृत्या शीतलस्पर्शो हिमविद्धश्च साम्प्रतम्।
प्रवाति पश्चिमो वायुः काले द्विगुणशीतलः॥ ११॥

---

१. नवीन अन्न ग्रहण करने से पूर्व जो हवि दी जाती है उसे आग्रयण कहते हैं।

२. इस प्रमाण से यह स्पष्ट एवं निश्चित है कि दीपावली पर्व का श्रीराम के राजगद्दी पर बैठने से कोई सम्बन्धी नहीं है। यह वैदिक पर्व है। रामायणकाल में भी दीपावली पर्व मनाया जाता था।

३. खेती आदि करने में अनेक जीवों की हिंसा होती है। यज्ञ करने से वायु के शुद्ध होने से अन्न-जल की शुद्धि होकर पुण्य प्राप्त होता है।



स्वभाव से शीतल पश्चिम का वायु इस समय हिमकणों से परिपूर्ण होने के कारण द्विगुण शीतल होकर चल रहा है।

अस्मिंस्तु पुरुषव्याघ्रः काले दुःखसमन्वितः।
तपश्चरति धर्मात्मा त्वद्भक्त्या भरतः पुरे॥ १२॥

हे पुरुषसिंह! इस समय आपके वियोगजनित दुःख से सन्तप्त तथा आपकी भक्ति में अनुरक्त धर्मात्मा भरत भी अयोध्या में तप कर रहे हैं।

त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगांश्च विविधान् बहून्।
तपस्वी नियताहारः शेते शीते महीतले॥ १३॥

तपस्वी भरत राज्य, मान और अनेक प्रकार के भोगों को त्याग कर फल-मूल खाकर इस शीतलकाल में पृथिवी पर सोते हैं।

अत्यन्तसुखसंवृद्धः सुकुमारो हिमार्दितः।
कथं न्वपररात्रेषु सरयूमवगाहते॥ १४॥

जिस भरत का अत्यन्त सुखमय वातावरण में पालन-पोषण हुआ है और जो स्वभाव से ही सुकुमार हैं वे भरत सर्दी में ठिठुरते हुए रात्रि के अन्तिम प्रहर में सरयू नदी में किस प्रकार स्नान करते होंगे?

जितः स्वर्गस्तव भ्राता भरतेन महात्मना।
वनस्थमपि तापस्ये यस्त्वामनुविधीयते॥ १५॥

आपके भाई महात्मा भरत ने स्वर्ग को जीत लिया है जो नगर में रहते हुए भी वे आपके समान तपस्वी का वेश धारण कर तपस्वियों के नियमों का पालन कर रहे हैं। (भाव यह है कि आपके वियोग में उन्होंने राज्य के स्वर्गीय भोगों को भी तिलाञ्जलि दे दी है।)

न पित्र्यमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति।
ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः॥ १६॥

संसार में जो कहावत[1] प्रचलित है कि मनुष्य में पिता का स्वभाव नहीं आता, अपितु माता का स्वभाव आता है, भरतजी ने इस लौकिक उक्ति को झूठा करके दिखा दिया है।

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥ १७॥

परन्तु जिसके पति तो महाराज दशरथ हों, जिसके पुत्र चरित्र के धनी साधु-स्वभाव भरतजी हैं वह माता कैकेयी ऐसे क्रूर स्वभाववाली कैसे हो गई?

इत्येवं लक्ष्मणे वाक्यं स्नेहाद्ब्रुवति धार्मिके।
परिवादं जनन्यास्तमसहन् राघवोऽब्रवीत्॥ १८॥

भ्रातृस्नेह के कारण जब धर्मात्मा लक्ष्मण ने इस प्रकार के वचन कहे तब कैकेयी की निन्दा को सहन न कर श्रीराम ने कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु॥ १९॥

भाई लक्ष्मण! तुम्हें माता कैकेयी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। तुम तो इक्ष्वाकुनाथ भाई भरत की ही चर्चा करो।

निश्चिताऽपि हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता।
भरतस्नेहसन्तप्ता बालिशी क्रियते पुनः॥ २०॥

यद्यपि मैंने चौदह वर्ष तक वन में रहने का निश्चय किया हुआ है और मैं उसके लिए दृढ़ हूँ तथापि जब मुझे भरत के स्नेह का स्मरण आता है तब मैं व्याकुल हो जाता हूँ और मेरी बुद्धि बालकों जैसी हो जाती है।

कदा न्वहं समेष्यामि भरतेन महात्मना।
शत्रुघ्नेन च वीरेण त्वया च रघुनन्दन॥ २१॥

हे रघुकुलशिरोमणि लक्ष्मण! पता नहीं वह समय कब आयेगा जब मैं भाई भरत और शत्रुघ्न से तुम्हारे साथ फिर मिलूँगा। (जब हम चारों भाई एकत्र होकर सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे वह स्वर्णिम समय कब आयेगा?)

---

१. हिन्दी भाषा में कहावत का स्वरूप यह है—

माँ पै पूत पिता पै घोड़ा।
बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा॥



इत्येवं विलपनंस्तत्र प्राप्य गोदावरीं नदीम्।
चक्रेऽभिषेकं काकुत्स्थ सानुजः सह सीतया॥ २२॥

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए लक्ष्मण और सीतासहित श्रीराम गोदावरी नदी पर पहुँच गये, फिर तीनों ने गोदावरी नदी में स्नान किया।

➤ द्वादशः सर्गः ➤ (१२)

शूर्पनखा का आगमन—

कृताभिषेको रामस्तु सीता सौमित्रिरेव च।
तस्माद्गोदावरीतीरात्ततो जग्मुःस्वमाश्रमम्॥ १॥

स्नान करने के पश्चात् राम-लक्ष्मण और सीता उस गोदावरी नदी के तट से अपने आश्रम में लौट आये।

आश्रमं तमुपागम्य कृत्वा पौर्वाह्णिकम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा चकार विविधाः कथाः॥ २॥

आश्रम में आकर और सन्ध्या तथा अग्निहोत्रादि दैनिक कृत्यों को कर श्रीराम लक्ष्मणजी के साथ नाना प्रकार की कथाएँ कहने लगे।

तथाऽऽसीनस्य रामस्य कथासंसक्तचेतसः।
तं देशं राक्षसी काचिदाजगाम यदृच्छया॥ ३॥

जिस समय राम पर्णशाला में बैठे हुए लक्ष्मणजी से बातचीत कर रहे थे, उस समय एक राक्षसी=स्त्री-सुलभ शालीनता से हीन एक स्त्री, अकस्मात् वहाँ आ पहुँची।

सा तु शूर्पणखा नाम दशग्रीवस्य राक्षसः।
भगिनी राममासाद्य राक्षसी काममोहिता॥ ४॥

उसका नाम शूर्पणखा[१] था और वह रावण की बहन थी। राम के पास पहुँच और उनके रूप-लावण्य को देखकर वह राक्षसी काम से मोहित होकर उन पर आसक्त हो गयी।

सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी।
विशालाक्षं विरूपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा॥ ५॥
प्रतिरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वरा।
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी॥ ६॥
न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना।
शरीरजसमाविष्टा राक्षसी वाक्यमब्रवीत्॥ ७॥

श्रीराम सुन्दर मुखवाले थे तो वह राक्षसी दुर्मुखी थी, राम का पेट सुडौल था और वह बड़ी तौंदवाली थी। राम के नेत्र विशाल थे और उसकी आँखें भद्दी थीं, राम के केश काले, चिकने और सुन्दर थे तो उस राक्षसी के बाल ताम्रवर्ण और भद्दे थे। राम देखने में सुन्दर और प्रिय थे तो वह राक्षसी महाकुरूपा थी, राम का स्वर कोमल और मधुर था तो उस राक्षसी का स्वर महाकर्कश था, श्रीराम युवक थे तो वह महावृद्धा थी। राम मधुरभाषी थे और वह कटुभाषिणी थी। श्रीराम सदाचारी थे और वह अत्यधिक दुराचारिणी थी, राम प्रियदर्शी थे तो वह अप्रियदर्शिनी थी। ऐसी वह राक्षसी काम से आतुर होकर श्रीराम से बोली—

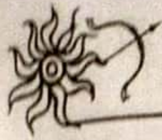
जटी तापसरूपेण सभार्यः शरचापधृत्।
आगतस्त्वमिमं देशं कथं राक्षससेवितम्॥ ८॥

जटाधारी, तपस्वियों के वेश में, धनुष-बाण धारण किये हुए, स्त्री सहित तुम राक्षसों से सेवित इस प्रदेश में क्यों आये हो?

एवमुक्तस्तु राक्षस्या शूर्पणख्या परन्तपः।
ऋजुबुद्धितया सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ ९॥

राक्षसी शूर्पनखा के ऐसा कहने पर श्रीराम ने सरल स्वभाव से अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कहना आरम्भ

१. शूर्पनखा का अर्थ है—शूर्प=छाज और नख= नाखून। छाज जैसे लम्बे नाखूनवाली। जैसे आजकल लम्बे-लम्बे नाखून बढ़ाते हैं ऐसे ही उसने भी नाखून बढ़ाए हुए थे।



कर दिया।

आसीद्दशरथो नाम राजा त्रिदशविक्रमः।
तस्याहमग्रजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः॥ १०॥

देवतुल्य पराक्रमी महाराज दशरथ नाम के एक राजा थे। मैं उन्हीं का पुत्र हूँ और संसार में राम के नाम से प्रसिद्ध हूँ।

भ्राताऽयं लक्ष्मणो नाम यवीयान् मामनुव्रतः।
इयं भार्या च वैदेही मम सीतेति विश्रुता॥ ११॥

मेरा आज्ञाकारी यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है और यह विदेह की पुत्री मेरी धर्मपत्नी है। यह सीता के नाम से विख्यात है।

नियोगात्तु नरेन्द्रस्य पितुर्मातुश्च यन्त्रितः।
धर्मार्थं धर्मकांक्षी च वनं वस्तुमिहागतः॥ १२॥

अपने पिता सम्राट् दशरथ और माता की आज्ञा से प्रेरित होकर मैं तपरूपी धर्म-सिद्धि के लिए तथा पिताजी की आज्ञा पालन करने की आकांक्षा से इस वन में आया हूँ।

त्वां तु वेदितुमिच्छामि कथ्यतां काऽसि कस्य वा।
इह वा किन्निमित्तं त्वमागता ब्रूहि तत्त्वतः॥ १३॥

अब मैं तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूँ। तुम बतलाओ कि तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो अथवा किसकी लड़की हो, यहाँ तुम किस लिए आई हो—इन सभी बातों का ठीक-ठीक उत्तर दो।

साऽब्रवीद्वचनं श्रुत्वा राक्षसी मदनार्दिता।
श्रूयतां राम वक्ष्यामि तत्त्वार्थं वचनं मम॥ १४॥

श्रीराम के वचन सुन वह कामपीड़ित राक्षसी बोली—हे राम! सुनो, मैं अपना ठीक-ठीक परिचय आपको देती हूँ।

अहं शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी।
अरण्यं विचरामीदमेका सर्वभयङ्करः॥ १५॥

मेरा नाम शूर्पनखा है। मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली राक्षसी हूँ। सबको संत्रस्त करते हुए मैं इस वन में घूमा करती हूँ।

रावणो नाम मे भ्राता बलीयान् राक्षसेश्वरः।
वीरो विश्रवसः पुत्रो यदि ते श्रोत्रमागतः॥ १६॥

राक्षसों का राजा, महापराक्रमी, अत्यन्त बलवान, विश्रवा मुनि का पुत्र रावण मेरा भाई है। सम्भव है आपने उसका नाम सुना हो।

प्रवृद्धनिद्रश्च सदा कुम्भकर्णो महाबलः।
विभीषणस्तु धर्मात्मा न तु राक्षसचेष्टितः॥ १७॥

मेरे एक भाई का नाम कुम्भकरण है जो बहुत सोता है, परन्तु है बड़ा बलवान्। मेरे एक भाई का नाम विभीषण है, वह बड़ा धर्मात्मा है। उसका आचरण राक्षसों जैसा नहीं है।

प्रख्यातवीर्यौ च रणे भ्रातरौ खरदूषणौ।
तानहं समतिक्रान्ता राम त्वा पूर्वदर्शनात्॥ १८॥
समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम्।
चिराय भव भर्ता मे सीतया किं करिष्यसि॥ १९॥

संग्राम में प्रसिद्ध पराक्रमवाले खर और दूषण नाम के मेरे दो भाई और हैं। हे राम! तुम्हारे प्रथम दर्शन से ही तुम पर आसक्त हो उन सबकी कुछ परवाह न कर तुम जैसे उत्तम पुरुष को अपना पति बनाने के लिए मैं यहाँ आई हूँ, अतः आप चिरकाल के लिए मेरे पति बनो। तुम सीता को लेकर क्या करोगे?

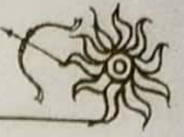
विकृता च विरूपा च न चेयं सदृशी तव।
अहमेवानुरूपा ते भार्यारूपेण पश्य माम्॥ २०॥

यह सीता विकराल और कुरूप है, अतः आपके योग्य नहीं है। सौन्दर्य की दृष्टि से मैं ही आपके अनुरूप हूँ। आप मुझे अपनी पत्नी ही समझें।

इमां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
अनेन ते सह भ्रात्रा भक्षयिष्यामि मानुषीम्॥ २१॥

इस कुरूपा, कुलटा, विकटाकार और थलथल तौंदवाली मानुषी सीता को मैं तुम्हारे इस भाई के साथ खा जाऊँगी।

इत्येवमुक्तः काकुत्स्थ प्रहस्य मदिरेक्षणाम्।
इदं वचनमारेभे वक्तुं वाक्यविशारदः॥ २२॥



शूर्पनखा के ऐसा कहने पर वाक्यविशारद राम ने मदोन्मत्त आँखोंवाली राक्षसी से मुस्करा कर यह कहना आरम्भ किया—

कृतदारोऽस्मि भवति भार्येयं दयिता मम।
त्वद्विधानां तु नारीणां सुदुःखा ससपत्नता॥ २३॥

हे देवि! मैं तो विवाहित हूँ और यह मेरी पत्नी मुझे प्रिय भी बहुत है। तुम्हारी जैसी स्त्री के लिए सौत का होना बड़ा दुःखदायी होगा।

अनुजस्त्वेष मे भ्राता शीलवान् प्रियदर्शनः।
श्रीमानकृतदारश्च[१] लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्॥ २४॥

यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण सुन्दर, चरित्रवान्, तेजस्वी और महापराक्रमी है और इस समय इसके पास स्त्री भी नहीं है।

अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः।
अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति॥ २५॥

चिरकाल से इसे स्त्री-सुख प्राप्त नहीं हुआ है। यह अत्यन्त रूपवान् और तरुण भी है। तुम्हारे सौन्दर्य को देखते हुए यह तुम्हारे अनुकूल पति होगा।

एनं भज विशालाक्षि भर्तारं भ्रातरं मम।
असपत्ना[२] वरारोहे मेरुमर्कप्रभा यथा॥ २६॥

हे विशाल नेत्रोंवाली! तुम मेरे इस भाई को अपना पति बनाकर इसकी सेवा करो। हे वरारोहे! इसे अपना पति बनाने से तुम्हें सौत का दुःख भी नहीं होगा और तुम इसके साथ उसी प्रकार सुखपूर्वक जीवन निर्वाह कर सकोगी जिस प्रकार सूर्य की किरणें दीर्घकाल तक मेरु पर्वत के पास रहती हैं।

इति रामेण सा प्रोक्ता राक्षी काममोहिता।
विसृज्य रामं सहसा ततो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ २७॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर काम से पीड़ित वह राक्षसी तुरन्त राम को छोड़ लक्ष्मणजी के पास जाकर बोली—

अस्य रूपस्य ते युक्ता भार्याहं वरवर्णिनी।
मया सह सुखं सर्वान् दण्डकान् विचरिष्यसि॥ २८॥

हे लक्ष्मण! सर्वसुन्दरी होने के कारण आपके सुन्दर रूप के योग्य मैं आपकी धर्मपत्नी बन सकती हूँ। मुझे अपनी पत्नी बनाकर तुम सुख-पूर्वक इस सम्पूर्ण दण्डक वन में विचरण कर सकोगे।

एवमुक्तस्तु सौमित्री राक्षस्या वाक्यकोविदः।
ततः शूर्पणखां स्मित्वा[३] लक्ष्मणो युक्तमब्रवीत्॥ २९॥

शूर्पनखा की यह बात सुनकर बोलनेवालों में चतुर श्रीलक्ष्मणजी ने मुस्करा कर उससे युक्ति युक्त वचन कहे—

कथं दासस्य मे दासी भार्या भवितुमिच्छसि।
सोऽहमार्येण परवान् भ्रात्रा कमलवर्णिनि॥ ३०॥

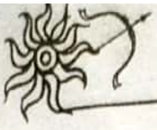
---

१. **अकृतदारः** शब्द का अर्थ अविवाहित करना ठीक नहीं है। **अकृतदारः** का अर्थ गोविन्दराज ने "असहकृतदारः" किया है। यही ठीक भी है। असहकृतदारः का अर्थ है जिसकी स्त्री साथ में नहीं है अथवा स्त्री से हीन।

२. यहाँ कुछ लोग श्रीराम के चरित्र पर आक्षेप करते हुए कहते हैं कि राम ने राक्षसी से झूठ क्यों बोला? श्रीराम सत्यवादी थे, परन्तु उस कुरूपा और विकराल राक्षसी के प्रणय-निवेदन पर श्रीराम को भी विनोद सूझा और उन्होंने कह दिया कि लक्ष्मण अकृतदारः है, इससे विवाह करने पर तुम्हें अभी सौत का दुःख नहीं होगा। विनोद श्रीराम के स्वभाव का एक अंग था। जिस समय वे अपनी सम्पत्ति का दान कर रहे थे उस समय त्रिजट नामक ब्राह्मण से भी उन्होंने मजाक किया था। यहाँ भी वे शूर्पनखा से विनोद ही कर रहे थे, परन्तु वह राम के विनोद को समझ नहीं सकी। यह बात इसी सर्ग के श्लोक ३९ से स्पष्ट है।

३. **स्मित्वा**=मुस्कराकर—इन शब्दों से स्पष्ट है कि लक्ष्मणजी भी शूर्पनखा से विनोद ही कर रहे थे। श्लोक ३२, ३३ से यह बात और भी पुष्ट होती है। २२वें श्लोक में राम ने भी **प्रहस्य**=मुस्कराकर ही कहा था। इन सभी सन्दर्भों से स्पष्ट है कि श्रीराम और लक्ष्मण उस राक्षसी के साथ विनोद कर रहे थे।

४. किसी भाषा के कवि ने इस घटना का चित्रण इस रूप में प्रस्तुत किया है कि जब शूर्पनखा राम को छोड़ लक्ष्मण



हे कमलकान्तिवाली! मुझ दास की स्त्री बनकर तुम दासी क्यों बनना चाहती हो, क्योंकि मैं तो अपने बड़े भाई का सेवक हूँ।

समृद्धार्थस्य सिद्धार्था मुदितामलवर्णिनी।
आर्यस्य त्वं विशालाक्षि भार्या भव यवीयसी॥ ३१॥

हे विशालनेत्रे! यदि तुम सर्व ऐश्वर्यसम्पन्न मेरे बड़े भाई की छोटी या दूसरी पत्नी बनोगी तो तुम्हारी मनः कामनाएँ पूर्ण होंगी।

एनां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरम्।
भर्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति॥ ३२॥

जब तू इनसे विवाह कर लेगी तब ये इस कुरूपा, कुलटा, कराली, बड़े पेटवाली और वृद्धा स्त्री को त्याग कर तेरे ही अनुरागी हो जायेंगे।

इति सा लक्ष्मणेनोक्ता कराला निर्णतोदरी।
मन्यते तद्वचस्तथ्यं परिहासाविचक्षणा॥ ३३॥

जब लक्ष्मणजी ने ऐसा कहा तब उस तौंदल और भयंकर राक्षसी ने लक्ष्मणजी के उस उपहास के मर्म को न समझ उनकी बातों को सत्य ही मान लिया।

सा रामं पर्णशालायामुपविष्टं परन्तपम्।
सीतया सह दुर्धर्षमब्रवीत्काममोहिता॥ ३४॥

कामासक्त वह शूर्पनखा पर्णशाला में सीता के साथ बैठे हुए शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले, दुर्धर्ष श्रीराम के पास जाकर बोली—

एनां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
वृद्धां भार्यामवष्टभ्य मां न त्वं बहुमन्यसे॥ ३५॥

हे राम! इस कुरूपा, कुलटा, भयंकर, बड़े पेटवाली और वृद्धा स्त्री सीता के कारण तुम (मेरी जैसी सुन्दरी का) तनिक भी सम्मान नहीं करते हो।

अद्येमां भक्षयिष्यामि पश्यतस्तव मानुषीम्।
त्वया सह चरिष्यामि निःसपत्ना यथासुखम्॥ ३६॥

अच्छा देखो! मैं अभी तुम्हारे सामने इस मानुषी को खा डालती हूँ, फिर सौत रहित होकर मैं तुम्हारे साथ आनन्दपूर्वक इस वन में विहार करूँगी।

इत्युक्त्वा मृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा।
अभ्यधावत्संक्रुद्धा महोल्का रोहिणीमिव॥ ३७॥

यह कहकर दहकते हुए अंगारे के समान नेत्रोंवाली शूर्पनखा महाक्रुद्ध होकर हिरनी के बच्चे जैसे नेत्रोंवाली सीता पर उसी प्रकार झपटी जिस प्रकार उल्का रोहिणी नक्षत्र पर झपटता है।

तां मृत्युपाशप्रतिमामापतन्तीं महाबलः।
निगृह्य रामः कुपितस्ततो लक्ष्मणमब्रवीत्॥ ३८॥

मृत्युपाश के समान सीता पर झपटती हुई उस राक्षसी को क्रोध में भर हुङ्कार से रोकते हुए श्रीराम लक्ष्मणजी से बोले—

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथञ्चन।
न कार्यः पश्य वैदेहीं कथञ्चित्सौम्य जीवतीम्॥ ३९॥

हे लक्ष्मण! ऐसे असभ्य क्रूर और अनार्य लोगों के साथ परिहास कभी नहीं करना चाहिए। हे सौम्य! शूर्पनखा की इस क्रूरता को देख सीता के जीवन की रक्षा का उपाय सोचो।

इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम्।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि॥ ४०॥

हे नरकेसरी! रूपरहित, कुलटा, अत्यन्त मतवाली और बड़े पेटवाली इस राक्षसी का अङ्ग-भङ्ग करके तुम इसे और भी कुरूप बना दो।

के पास पहुँची तब लक्ष्मणजी ने उसे माता कहकर सम्बोधित किया। वह राक्षसी इस सम्बोधन से चकित होकर पूछने लगी—

मैं गढ लंक में वास करूँ तू बन बन फिरे ब्रह्मचारी।
प्रीति नहीं परिचय नहीं किस विधि भई तेरी महतारी॥

यह सुन लक्ष्मणजी ने उत्तर दिया—

साँच कहूँ सुन तोहे निशाचरि तू मेरी माता भई तब ही ते।
काम के भाव धरे मन में राम के तीर गई जब ही ते॥



इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।
उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः॥ ४१॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर बलशाली लक्ष्मण ने क्रुद्ध हो, म्यान से तलवार निकालकर राम के देखते-देखते उस राक्षसी के नाक और कान काट[1] डाले।

निकृत्तकर्णनासा तु विस्वरं सा विनद्य च।
यथागतं प्रदुद्राव घोरा शूर्पणखा वनम्॥ ४२॥

नाक-कान कट जाने पर भयंकर चीत्कार करती हुई वह राक्षसी जिधर से आई थी उसी ओर वन में भाग गई।

ततस्तु सा राक्षससङ्घसंवृतं
खरं जनस्थानगतं विरूपिता।
उपेत्य तं भ्रातरमुग्रदर्शनं
पपात भूमौ गगनाद्यथाऽशनिः॥ ४३॥

भागती हुई वह विरूपिता राक्षसी अपने सहायक राक्षसों से संरक्षित जनस्थान में अपने तेजस्वी भाई खर के समीप जाकर आकाश में गिरनेवाली विद्युत की भाँति भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ी।

➤ त्रयोदशः सर्गः ➤ (१३)

खर का आक्रोश और श्रीराम पर आक्रमण का आदेश—

तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम्।
भगिनीं क्रोधसन्तप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः॥ १॥

कुरूप और रक्त से सनी हुई अपनी बहन को पृथिवी पर पड़े हुए देखकर क्रोध से सन्तप्त हो खर ने अपनी बहन से पूछा—

उत्तिष्ठ तावदाख्याहि प्रमोहं जहि सम्भ्रमम्।
व्यक्तमाख्याहि केन त्वमेवंरूपा विरूपिता॥ २॥

हे बहन! उठो, अपनी घबराहट और भय को

---

१. कुछ लोगों का विचार है कि शूर्पनखा ने श्रीराम के समक्ष प्रणय-निवेदन किया था। श्रीराम ने उसे ठुकरा दिया। बस यही शूर्पनखा की नाक कटना था, जैसे आज भी कहा जाता है—'अरे उसने तो नाक ही कटवा दी।' रामायण के उपर्युक्त श्लोक से इस कपोलकल्पना का खण्डन हो जाता है। यहाँ तो लक्ष्मणजी ने तलवार से नाक और कान दोनों काटे हैं। कान काटने का मुहावरा चातुर्य प्रदर्शित करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे—यह तो बड़े-बड़ों के कान काटता है।

क्या राम ने शूर्पनखा के नाक-कान काट कर कोई अनुचित कार्य किया था? इस प्रश्न के उत्तर में हम कह सकते हैं कि श्रीराम ने उस राक्षसी को जो दण्ड दिया वह उचित एवं शास्त्र-सम्मत ही था। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

स्वजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः।
प्रतिलोम्ये वधः पुंसः स्त्रीणां नासादिकर्त्तनम्॥

—याज्ञवल्क्य स्मृ० २। २८९

यदि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की इच्छा के बिना धींगामस्ती से स्व-वर्ण में विवाह करना चाहें तो उन्हें उत्तम-दण्ड=कठोरतम दण्ड देना चाहिए। यदि वे अपने से हीन वर्ण में अनुलोम विवाह करना चाहें तो मध्यम दण्ड और यदि अपने से उच्चवर्ण में प्रतिलोम विवाह करना चाहे तो पुरुष को वधदण्ड देना चाहिए और स्त्री के नाक-कान काट लेने चाहिएँ।

शूर्पनखा विधवा थी और पुलस्त्यवंशी रावण की बहन थी। वह शास्त्र-मर्यादा के विरुद्ध क्षत्रिय राम से प्रतिलोम विवाह करना चाहती थी, अतः श्रीराम ने उसे जो दण्ड दिया वह सर्वथा उचित ही था।



छोड़कर स्पष्ट बतलाओ कि तुम्हें किसने कुरूप किया है।

कः कृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम्।
तुदत्यभिसमापन्नमङ्गुल्यग्रेण लीलया॥ ३॥

कुण्डली मारकर बैठे हुए निरपराध भयङ्कर काले विषधर=साँप के साथ खिलवाड़ के रूप में अँगुलियों से किसने छेड़-छाड़ की है।

कः कालपाशमासज्य कण्ठे मोहान्न बुध्यते।
यस्त्वामद्य समासाद्य पीतवान् विषमुत्तमम्॥ ४॥

तुम्हें छेड़कर अज्ञानवश यम-फाँस को किसने अपने गले में बाँधा है? तुम्हारे साथ वह कुत्सित व्यवहार कर किसने हलाहल विष का पान किया है?

इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धस्य च विशेषतः।
ततः शूर्पणखा वाक्यं सबाष्पमिदमब्रवीत्॥ ५॥

क्रोध में भरे हुए अपने भाई खर के इन वचनों को सुनकर शूर्पनखा आँसू बहाती हुई बोली—

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥ ६॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ धर्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ ७॥

तरुण, रूपसम्पन्न, सुकुमार, महाबली, कमल के समान विशाल नेत्रोंवाले, चीर तथा काला मृगचर्म धारण करनेवाले, फल-मूल भक्षी, जितेन्द्रिय, तपस्वी एवं धर्मचारी राम और लक्ष्मण नाम के दो भाई हैं जो महाराज दशरथ के पुत्र हैं।

गन्धर्वराजप्रतिमौ पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ।
देवौ वा मानुषौ वा तौ न तर्कयितुमुत्सहे॥ ८॥

वे दोनों गन्धर्वराज के समान सुन्दर हैं और राजलक्षणों से युक्त हैं। वे दोनों देवता हैं या मनुष्य इसका निर्णय मैं नहीं कर सकती।

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता।
दृष्टा तत्र मया नारी तयोर्मध्ये सुमध्यमा॥ ९॥

उन दोनों के साथ मैंने एक पतली कमरवाली, सुन्दरी और आभूषणों से समलंकृत स्त्री भी देखी।

ताभ्यामुभाभ्यां सम्भूय प्रमदामधिकृत्य ताम्।
इमामवस्थां नीताऽहं यथाऽनाथाऽसती तथा॥ १०॥

उस स्त्री के कारण अथवा उस स्त्री के कहने पर उन दोनों ने मिलकर मेरी ऐसी दुर्दशा की है जैसी किसी अनाथा और कुलटा स्त्री की जाती है।

तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्च हतयोरहम्।
स्फेनं पातुमिच्छामि रुधिरं रणमूर्धनि॥ ११॥

हे भाई! संग्राम में उस कुटिल आचरणवाली स्त्री और दोनों भाइयों के मारे जाने पर मैं उनके रक्त का पान करना चाहती हूँ। यही मेरी सबसे बढ़कर अभिलाषा है।

इति तस्यां ब्रुवाणायां चतुर्दश महाबलान्।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धो राक्षसानन्तकोपमान्॥ १२॥

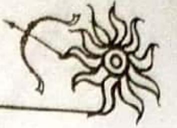
शूर्पनखा के ऐसा कहने पर क्रोध में भरे हुए खर ने यमराज के समान बलवान् तथा भयङ्कर चौदह राक्षसों को आज्ञा दी—

मानुषौ शस्त्रसम्पन्नौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ।
प्रविष्टौ दण्डकारण्यं घोरं प्रमदया सह॥ १३॥
तौ हत्वा तां च दुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ।
इयं च रुधिरं तेषां भगिनी मम पास्यति॥ १४॥

अस्त्र-शस्त्रों से युक्त, चीर तथा काले मृग का चर्म धारण किये हुए दो मनुष्य एक स्त्री के साथ इस घोर दण्डक वन में आये हुए हैं। उन दोनों मनुष्यों को उस दुष्ट स्त्री सहित मारकर तुम शीघ्र लौट आओ, क्योंकि मेरी बहन उन सबका रक्त पान करना चाहती है।

इति प्रतिसमादिष्टा राक्षसास्ते चतुर्दश।
तत्र जग्मुस्तया सार्धं घना वातेरिता यथा॥ १५॥

खर के ऐसा आदेश देने पर वे चौदहों राक्षस आकाश-मण्डल में वायु द्वारा उड़ाये गये मेघों की भाँति शूर्पनखा के साथ उस स्थान पर गये जहाँ श्रीराम थे।



चतुर्दशः सर्गः (१४)

चौदह राक्षसों का वध और शूर्पनखा का विलाप—

तान् दृष्ट्वा राघवः श्रीमान् चापं हेमविभूषितम्।
चकार सज्यं धर्मात्मा तानि रक्षांसि चाब्रवीत्॥ १ ॥

उन राक्षसों को वहाँ आया देख श्रीराम ने अपने सुवर्ण-विभूषित धनुष पर प्रत्यञ्चा=डोरी चढ़ाकर उन राक्षसों से कहा—

तिष्ठतैवात्र सन्तुष्टा नोपावर्तितुमर्हथ।
यदि प्राणैरिहार्थो वा निवर्तध्वं निशाचराः॥ २ ॥

यदि तुम लोग युद्ध करना चाहते हो तो प्रसन्नता-पूर्वक जहाँ-के-तहाँ खड़े रहना, भागना मत और यदि अपने प्राण बचाने हों तो हे राक्षसो! तुम यहाँ से शीघ्र लौट जाओ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते चतुर्दश।
ऊचुर्वाचं सुसंक्रुद्धा ब्रह्मघ्नाः शूलपाणयः॥ ३ ॥

श्रीराम की यह बात सुनकर वे ब्रह्मघाती और शूलधारी चौदह राक्षस महाक्रुद्ध होकर बोले—

क्रोधमुत्पाद्य नो भर्तुः खरस्य सुमहात्मनः।
त्वमेव हास्यसे प्राणानद्यास्माभिर्हतो युधि॥ ४ ॥

हम लोगों के स्वामी खर के क्रोध को प्रदीप्त करने के कारण आज संग्राम में तुम ही हम लोगों के द्वारा मारे जाकर अपने प्राण गँवाओगे।

इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धा राक्षसास्ते चतुर्दश।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा राममेवाभिदुद्रुवुः॥ ५ ॥

ऐसा कहकर उन चौदह राक्षसों ने क्रुद्ध हो और अपने अस्त्रों को उठा श्रीराम पर आक्रमण कर दिया।

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् सूर्यसन्निभान्।
मुमोच राघवो बाणान् वज्रानिव शतक्रतुः॥ ६ ॥

उन राक्षसों के आक्रमण करने पर महातेजस्वी श्रीराम ने सूर्य के समान देदीप्यमान बिना फर के बाण राक्षसों पर उसी प्रकार छोड़े जिस प्रकार इन्द्र अपना वज्र चलाते हैं।

ते भित्त्वा रक्षसां वेगाद्वक्षांसि रुधिराप्लुताः।
विनिष्पेतुस्तदा भूमौ न्यमज्यन्ताशनिस्वनाः॥ ७॥

वे बाण अपने वेग से राक्षसों के हृदय को विदीर्ण कर और रुधिर में सने भूमि पर इस प्रकार जा पड़े जैसे भीषण शब्द करते हुए बिजली गिरती है।

ते भिन्नहृदया भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः।
निपेतुः शोणितार्द्राङ्गा विकृता विगतासवः॥ ८ ॥

बाणों के आघात से भग्न-हृदय वे सभी राक्षस जड़ से कटे वृक्ष की भाँति भूमि पर गिर पड़े। वे राक्षस खून से लथ-पथ थे, उनकी आकृति बिगड़ गई और वे निर्जीव हो गये।

तान् दृष्ट्वा पतितान् भूमौ राक्षसी क्रोधमूर्छिता।
सा नदन्ती महानादं जवाच्छूर्पणखा पुनः॥ ९ ॥
उपागम्य खरं सा तु किञ्चित्संशुष्कशोणिता।
पपात पुनरेवार्ता सनिर्यासेव वल्लरी॥ १० ॥

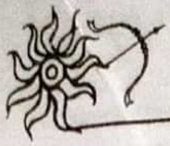
उन राक्षसों को भूमि पर लोटते हुए देख वह राक्षसी क्रोध से मूर्च्छित हो गई। महानाद करती हुई वह शूर्पनखा जिसके शररीर पर रक्त सूख गया है बड़े वेग से खर के पास पहुँची और सूखी हुई लता के समान वहाँ जाकर गिर पड़ी।

स पुनः पतितां दृष्ट्वा क्रोधाच्छूर्पणखां खरः।
उवाच व्यक्तया वाचा तामनर्थार्थमागताम्॥ ११ ॥

राक्षस वंश के लिए अनर्थकारी उस शूर्पनखा को पुनः आई हुई और भूमि पर पड़ी हुई देख खर क्रोध से भय और चिल्लाकर बोला—

मया त्विदानीं शूरास्ते राक्षसा रुधिराशनाः।
त्वत्प्रियार्थं विनिर्दिष्टाः किमर्थं रुद्यते पुनः॥ १२ ॥

मैंने तो तुझे प्रसन्न करने के लिए और राम-लक्ष्मण का रक्त पान करने के लिए चौदह राक्षस भेज दिये थे—अब तू पुनः किसलिए रो रही है?



अनाथवद्विलपसि नाथे तु मयि संस्थिते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैषीर्वैक्लब्यं त्यज्यतामिह॥ १३॥

अरे! जब मैं तेरा रक्षक उपस्थित हूँ तब तू अनाथिनी की भाँति क्यों रो रही है? उठ! डर मत और अपनी व्याकुलता को छोड़ दे।

इत्येवमुक्ता दुर्धर्षा खरेण परिसान्त्विता।
विमृज्य नयने सास्रे खरं भ्रातरमब्रवीत्॥ १४॥

खर के इस प्रकार कहने और सान्त्वना देने पर वह दुर्धर्षा राक्षसी अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछती हुई अपने भाई खर से कहने लगी—

प्रेषिताश्च त्वया वीरा राक्षसास्ते चतुर्दश।
समरे निहताः सर्वे सायकैर्मर्मभेदिभिः॥ १५॥

हे वीर! तुमने जिन चौदह राक्षसों को भेजा था श्रीराम ने उन सबको मर्मभेदी बाणों से मार दिया।

तान् दृष्ट्वा पतितान् भूमौ क्षणेनेव महाबलान्।
शरणं त्वां पुनः प्राप्ता सर्वतो भयदर्शिनी॥ १६॥

उन महाबली राक्षसों को कुछ ही क्षणों में भूमि पर गिरा (मरा) हुआ देख मैं सब ओर से भयभीत होकर पुनः तेरी शरण में आई हूँ।

विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनी।
किं मां न त्रायसे मग्नां विपुले शोकसागरे॥ १७॥

विषादरूपी मगरमच्छों से परिपूर्ण तथा भयरूपी तरंगों से तरंगित महासागर में मैं डूब रही हूँ फिर तू मुझे बचाता क्यों नहीं है?

शूरमानी न शूरस्त्वं मिथ्यारोपितविक्रमः।
मानुषौ यौ न शक्नोषि हन्तुं तौ रामलक्ष्मणौ॥ १८॥

तुम अपने आपको व्यर्थ ही शूरवीर समझते हो वस्तुतः तुम शूर हो नहीं, तुम तो शूर होने की डींग हाँकते हो, क्योंकि तुम उन दो मनुष्यों—राम और लक्ष्मण को भी नहीं मार सकते।

रामेण यदि ते शक्तिस्तेजो नास्ति निशाचर।
दण्डकारण्यनिलयं जहि तं कुलपांसना॥ १९॥

हे निशाचर! यदि तुझमें राम के साथ युद्ध करने की शक्ति और तेज नहीं है तो हे कुलाधम! तू दण्डकारण्य में बसना छोड़कर कहीं और चला जा।

➤ पञ्चदशः सर्गः ➤ (१५)

सेनासहित खर-दूषण का कूच—

एवमाधर्षितः शूरः शूर्पणख्या खरस्तदा।
उवाच राक्षसां मध्ये खरः खरतरं वचः॥ १॥

जब शूर्पनखा ने खर को बुरी तरह फटकारा और धिक्कारा तब वह वीर राक्षसों के मध्य उस शूर्पनखा से यह कठोर वचन बोला—

न रामं गणये वीर्यान् मानुषं क्षीणजीवितम्।
आत्मदुश्चरितैः प्राणान् हतो योऽद्य विमोक्ष्यति॥ २॥

अल्प जीवनवाले सामान्य मनुष्य राम के पराक्रम को मैं अपने समक्ष कुछ भी नहीं समझता। अपने अपराध के कारण उसे आज अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।

बाष्पः संह्रियतामेष संभ्रमश्च विमुच्यताम्।
अहं रामं सह भ्रात्रा नयामि यमसादनम्॥ ३॥

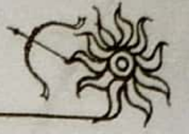
तू रोना-धोना बन्दकर और व्याकुलता को छोड़ दे। मैं राम और लक्ष्मण को आज ही यमराज के सदन का अतिथि बनाऊँगा।

परश्वधहतस्याद्य मन्दप्राणस्य संयुगे।
रामस्य रुधिरं रक्तमुष्णं पास्यसि राक्षसि॥ ४॥

हे राक्षसी! आज युद्ध में मेरे कुठार से मारे गये अधमरे राम के गर्मागर्म रक्त का तुम पान कर सकोगी।

सा प्रहृष्टा वचः श्रुत्वा खरस्य वदनाच्च्युतम्।
प्रशशंस पुनर्मौर्ख्याद् भ्रातरं रक्षसां वरम्॥ ५॥

खर के मुख से निकले इन वचनों को सुनकर



शूर्पनखा बहुत प्रसन्न हुई और मूर्खतावश राक्षस-श्रेष्ठ अपने भाई खर की प्रशंसा करने लगी।

तया परुषितः पूर्वं पुनरेव प्रशंसितः।
अब्रवीद्दूषणं नाम खरः सेनापतिं तदा॥ ६॥

इस प्रकार पहले धिक्कारा हुआ और पश्चात् प्रशंसा किया गया खर अपने सेनापति दूषण से बोला—

चतुर्दश सहस्त्राणि मम चित्तानवर्तिनाम्।
रक्षसां भीमवेगानां समरेष्वनिवर्तिनाम्॥ ७॥
नीलजीमूतवर्णानां घोराणां क्रूरकर्मणाम्।
सर्वोद्योगमुदीराणां रक्षसा सौम्य कारय॥ ८॥

हे सौम्य! मेरी आज्ञानुसार चलनेवाले, अति वेगवाले, संग्राम में कभी पीठ न दिखानेवाले, भयंकर, क्रूरकर्मी, युद्ध में अत्यन्त उत्साह रखनेवाले चौदह सहस्र राक्षसों को तुम शीघ्र ही युद्ध के लिए तैयार करो।

उपस्थापय मे क्षिप्रं रथं सौम्य धनूंषि च।
शरांश्चित्रांश्च खड्गश्च शक्तिश्च विविधाः शिताः॥ ९॥

हे सौम्य! नाना प्रकार की पैनी तलवारों और शक्तियों को, धनुष और विचित्र बाणों को तथा मेरे रथ को शीघ्र ही मेरे समक्ष उपस्थित करो।

अग्रे निर्यातुमिच्छामि पौलस्त्यानां महात्मनाम्।
वधार्थं दुर्विनीतस्य रामस्य रणकोविदः॥ १०॥

हे रण-पण्डित! मैं उद्दण्ड एवं अभिमानी राम का वध करने के लिए पुलस्त्य कुलोद्भव महाबली राक्षसों के आगे-आगे प्रस्थान करना चाहता हूँ।

इति तस्य ब्रुवाणस्य सूर्यवर्णं महारथम्।
सदश्वैः शबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथ दूषणः॥ ११॥

खर के ऐसा आदेश देने पर दूषण ने सूर्य की भाँति देदीप्यमान रथ में विचित्र वर्णवाले घोड़े जोतकर उसे खर के सामने लाकर उपस्थित कर दिया।

ध्वजनिस्त्रिंशसम्पन्नं किङ्किणीकविराजितम्।
सदश्वयुक्तं सोऽमर्षादारुरोह खरो रथम्॥ १२॥

ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित, खड्गादि उत्तम अस्त्र-शस्त्रों से युक्त, छोटी-छोटी घण्टियाँ जिसमें लटक रही थीं और जिसमें उत्तम जाति के घोड़े जुते हुए थे—ऐसे उत्तम रथ पर खर क्रुद्ध होकर सवार हुआ।

खरस्तु तन्महत्सैन्यं रथचर्मायुधध्वजम्।
निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्य दूषणः सर्वरक्षसाम्॥ १३॥

तब खर और दूषण दोनों ने रथों, ढालों, हथियारों और ध्वजाओं से युक्त राक्षसों की बड़ी सेना को कूच करने का आदेश दिया।

ततस्तद्राक्षसं सैन्यं घोरवर्मायुधध्वजम्।
निर्जगाम जनस्थानान् महानादं महाजवम्॥ १४॥

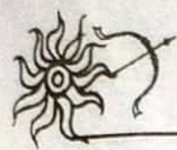
आज्ञा पाकर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित उस राक्षसी सेना ने महानाद करते हुए, बड़ी तेजी के साथ जनस्थान से प्रस्थान किया।

तांस्त्वभिद्रवतो दृष्ट्वा राक्षसान् भीमविक्रमान्।
खरस्यापि रथः किञ्चिज्जगाम तदनन्तरम्॥ १५॥

उन महापराक्रमी राक्षसों को वेग से प्रस्थान करते हुए देख खर ने भी उनके साथ-साथ प्रस्थान किया।

सा भीमवेगा समराभिकामा
महाबला राक्षसवीरसेना।
तौ राजपुत्रौ सहसाऽभ्युपेता
माला ग्रहाणामिवचन्द्रसूर्यौ॥ १६॥

जैसे द्युलोक में ग्रहों का समूह सूर्य और चन्द्रमा को घेरे रहता है इसी प्रकार संग्रामाभिलाषी, भयानक राक्षसों की वीर सेना ने अत्यन्त वेग से जाकर राम और लक्ष्मण को घेर लिया।



◀ षोडशः सर्गः ▶ (१६)

श्रीराम का राक्षसों के साथ युद्ध—

दृष्ट्वा तु वाहिनीं तेषां रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
सम्प्रहारस्तु सुमहान् भविष्यति न संशयः॥ १॥

राक्षसों की उस विशाल सेना को देखकर राम ने लक्ष्मणजी से कहा—हे लक्ष्मण! भीषण नर-संहार होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अनागतविधानं तु कर्तव्यं शुभमिच्छता।
आपदं शङ्कमानेन पुरुषेण विपश्चिता॥ २॥

अपना कल्याण चाहनेवाले पण्डित और आपत्ति की शंका करनेवाले पुरुष को आपत्ति आने से पूर्व ही उसके प्रतिकार का उपाय कर लेना चाहिए।

तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः।
गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसंकुलाम्॥ ३॥

अतः तुम हाथ में धनुष-बाण और सीता को साथ लेकर वृक्षों के झुरमुट में छिपी हुई किसी दुर्गम पर्वत-कन्दरा में जा बैठो।

प्रतिकूलितुमिच्छामि न हि वाक्यमिदं त्वया।
शापितो मम पादाभ्यां गम्यतां वत्स मा चिरम्॥ ४॥

मैं अपने कथन के प्रतिकूल कुछ नहीं सुनना चाहता। मैं तुम्हें अपने चरणों की शपथ देता हूँ। हे वत्स! तुम शीघ्र जाओ।

त्वं हि शूरश्च बलवान् हन्या ह्येतान्न संशयः।
स्वयं तु हन्तुमिच्छामि सर्वानेव निशाचरान्॥ ५॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम शूरवीर एवं बलवान् हो और अकेले ही सब राक्षसों को मार सकते हो, किन्तु मैं स्वयं इन राक्षसों को मारना चाहता हूँ।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः सह सीतया।
शरानादाय चापं च गुहां दुर्गां समाश्रयत्॥ ६॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण सीता को साथ ले और हाथ में धनुष-बाण धारण कर पर्वत की एक दुर्गम गुफा में चले गये।

तस्मिन् प्रविष्टे तु गुहां लक्ष्मणे सह सीतया।
हन्त निर्युक्तमित्युक्त्वा रामः कवचमाविशत्॥ ७॥

सीतासहित लक्ष्मण के गुफा में प्रविष्ट होने पर राम ने प्रसन्न होते हुए—'वाह! लक्ष्मण ने मेरी बात मान ली'—ऐसा कहते हुए कवच धारण किया।

स चापमुद्यम्य महच्छरानादाय वीर्यवान्।
बभूवावस्थितस्तत्र ज्यास्वनैः पूरयन्दिशः॥ ८॥

तदनन्तर महापराक्रमी श्रीराम धनुष धारण कर और बाणों को लेकर धनुष की टंकार से दशों दिशाओं में गुंजायमान करते हुए खड़े हो गये।

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं च रिपुघातिनम्।
ददर्शाश्रममागम्य खरः सहपुरःसरैः॥ ९॥

जब खर अपने साथियोंसहित श्रीरामाश्रम में पहुँचा तब उसने देखा कि श्रीराम क्रुद्ध हो धनुष हाथ में लिए हुए शत्रुओं का वध करने के लिए उद्यत हैं।

तं दृष्ट्वा सशरं चापमुद्यम्य खरनिःस्वनम्।
रामस्याभिमुखं सूतं चोद्यतामित्यचोदयत्॥ १०॥

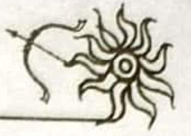
राम को देखकर खर ने भयंकर टंकार करनेवाले धनुष को उठा और बाण लेकर सारथि को ओदश दिया कि मेरे रथ को राम के सम्मुख ले चलो।

स खरस्याज्ञया सूतस्तुरगान् समचोदयत्।
यत्र रामो महाबाहुरेको धुन्वन् स्थितो धनुः॥ ११॥

खर की आज्ञा पा सारथि ने घोड़ों को उधर की ओर ही हाँका जहाँ महाबाहु श्रीराम धनुष को टंकारते हुए अकेले ही खड़े थे।

ततः शरसहस्रेण राममप्रतिमौजसम्।
अर्दयित्वा महानादं ननाद समरे खरः॥ १२॥

राम के सम्मुख पहुँच कर खर ने अनेक बाणों से श्रीराम को पीड़ित कर बड़े जोर से गर्जना की।



ततो रामः सुसंक्रुद्धो मण्डलीकृतकार्मुकः।
ससर्ज निशितान् बाणाञ्शतशोऽथ सहस्रशः॥ १३॥

तब श्रीराम ने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने धनुष को मण्डलाकार कर तीखे बाणों की झड़ी लगा दी।

ते शराः शत्रुसैन्येषु मुक्ता रामेण लीलया।
आददू रक्षसां प्राणान् पाशाः कालकृता इव॥ १४॥

बिना प्रयास के शत्रुसेना पर फेंके गये उन बाणों ने कालपाश की तरह राक्षसों के प्राण हरण कर लिये।

गजांश्च सगजारोहान् सहयान् सादिनस्तथा।
पदातीन् समरे हत्वा ह्यनयद्यमसादनम्॥ १५॥

श्रीराम ने सवारोंसहित हाथियों और घोड़ों तथा पैदल सैनिकों को मार कर यमलोक भेज दिया।

अवशिष्टाश्च ये तत्र विषण्णश्च निशाचराः।
खरमेवाभ्यधावन्त शरणार्थं शरार्दिताः॥ १६॥

जो राक्षस मारे जाने से बच गये वे बाणों की मार से पीड़ित होकर रक्षा के लिए खर की ओर दौड़े।

तान् सर्वान् पुनरादाय समाश्वास्य च दूषणः।
अभ्यधावत काकुत्स्थं क्रुद्धो रुद्रमिवान्तकः॥ १७॥

खर की शरण में आये हुए उन सैनिकों को आश्वासन दे और उन्हें अपने साथ ले दूषण क्रुद्ध होकर राम की ओर ऐसे ही झपटा मानो यमराज ही दौड़ रहा हो।

निवृत्तास्तु पुनः सर्वे दूषणाश्रयनिर्भयाः।
राममेवाभ्यधावन्त सालतालशिलायुधाः॥ १८॥

दूषण का सहारा पाकर वे सब भागे हुए राक्षस निर्भीक हो और साल, ताल एवं शिलारूपी आयुधों को लेकर श्रीराम के समक्ष गये।

द्रुमवर्षाणि मुञ्चन्तः शिलावर्षाणि राक्षसाः।
तद् बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥ १९॥

राक्षसों ने श्रीराम के ऊपर वृक्षों और शिलाओं की वर्षा की। उस समय अपूर्व, भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ।

नाददानं शरान् घोरान्न मुञ्चन्तं शिलीमुखान्।
विकर्षमाणं पश्यन्ति राक्षसास्ते शरार्दिताः॥ २०॥

श्रीराम ऐसी फुर्ती से बाण चला रहे थे कि राक्षस लोग यह नहीं देख पाते थे कि राम कब भयंकर पैने बाणों को तरकस से निकालते थे और कब छोड़ते थे। बाणों से आहत राक्षस राम को केवल धनुष को खेंचते हुए ही देखते थे।

युगपत्पतमानैश्च युगपच्च हतैर्भृशम्।
युगपत्पतितैश्चैव विकीर्णा वसुधाभवत्॥ २१॥

उन बाणों से कितने ही राक्षस एक साथ गिर पड़ते, कितने ही अत्यन्त आहत होते और बहुत-से एक साथ ही मूर्छित होकर गिर पड़ते थे। उन राक्षसों के शरीरों से वह रणस्थली ढक गई।

तान् दृष्ट्वा निहतान् संख्ये राक्षसान् परमातुरान्।
न तत्र सहितुं शक्ता रामं परपुरञ्जयम्॥ २२॥

बहुसंख्यक आतुर राक्षसों को युद्ध में मरा हुआ देख, जो राक्षस शेष बचे थे वे शत्रुञ्जयी श्रीराम के प्रहार को न सह सके और वहाँ से भाग खड़े हुए।

➤ सप्तदशः सर्गः ➤ (१७)

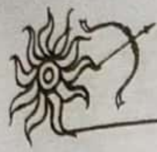
दूषण आदि का वध—

दूषणस्तु स्वकं सैन्यं हन्यमानं निरीक्ष्य सः।
शरैरशनिकल्पैस्तं राघवं समवाकिरत्॥ १॥

दूषण ने अपनी सेना को मारे जाते हुए देखकर वज्रतुल्य बाणों से श्रीराम के ऊपर शरवृष्टि की।

ततो रामः सुसंक्रुद्धः क्षुरेणास्य महद्धनुः।
चिच्छेद समरे वीरश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ २॥

तब श्रीराम ने भी क्रुद्ध हो क्षुर नामक अस्त्र से दूषण के विशाल धनुष को काट डाला और चार बाण चला कर उसके रथ के चारों घोड़ों को भी मार



डाला।

हत्वा चाश्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचन्द्रेण सारथेः।
शिरो जहार तद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याध वक्षसि॥ ३॥

घोड़ों को मारकर राम ने एक अर्धचन्द्राकार बाण से दूषण के सारथि का सिर काट गिराया और तीन बाण दूषण की छाती में मारे।

स च्छिन्नधन्वा विरथो प्रगृह्या परिघं रणे।
दूषणोऽभ्यद्रवद्रामं क्रूरकर्मा निशाचरः॥ ४॥

धनुष और रथ से हीन क्रूरकर्मा, राक्षस दूषण एक परिघ उठाकर युद्धक्षेत्र में श्रीराम के ऊपर झपटा।

तस्याभिपतमानस्य दूषणस्य स राघवः।
द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद सहस्ताभरणौ भुजौ॥ ५॥

दूषण को अपनी ओर आते देख श्रीराम ने दो बाणों से भूषणों से भूषित उसकी दोनों भुजाओं को काट डाला।

स कराभ्यां विकीर्णाभ्यां पपात भुवि दूषणः।
विषाणाभ्यां विशीर्णाभ्यां मनस्वीव महागजः॥ ६॥

हाथों के कटने से दूषण भूमि पर ऐसे गिर पड़ा जैसे दाँतों के टूटने पर धीर गजराज गिर पड़ता है।

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ दूषणं निहतं रणे।
व्यादिदेश खरः क्रुद्धः सेनाध्यक्षान् महाबलान्॥ ७॥

दूषण को युद्ध में मरा हुआ देख खर ने क्रोध में भरकर अपने महाबलवान् सेनापतियों को यह आदेश दिया—

अयं विनिहतः संख्ये दूषणः सपदानुगः।
महत्या सेनया सार्धं हनध्वं रामं राक्षसाः॥ ८॥

संग्राम में यह दूषण तो अपने अनुगामियोंसहित मारा गया है अब तुम सब राक्षस मिलकर अपनी विशाल सेना के साथ राम को मार डालो।

एवमुक्त्वा खरः क्रुद्धो बलाध्यक्षाः स सैनिकाः।
राममेवाभ्यवर्तन्त विसृजन्तः शरोत्तमान्॥ ९॥

क्रुद्ध खर के ऐसा कहने पर सेनाध्यक्षों ने अपनी-अपनी अधीनस्थ सेनाओं को साथ ले और तीखे बाण छोड़ते हुए श्रीराम पर आक्रमण किया।

ततः पावकसङ्काशैर्हेमवज्रविभूषितैः।
जघान शेषं तेजस्वी तस्य सैन्यस्य सायकैः॥ १०॥

तब तेजस्वी श्रीराम ने स्वर्ण एवं रत्नों से विभूषित अग्नि के समान देदीप्यमान बाणों से उस बची हुई सेना को मार डाला।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना॥ ११॥

श्रीराम ने पैदल और अकेले ही चौदह सहस्र[१] भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसों को सहज ही में मार डाला।

तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः।
राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्च रिपुसूदनः॥ १२॥

इस राम-राक्षस-युद्ध में सम्पूर्ण सेना में महारथी खर, राक्षस त्रिशिरा और शत्रुनाशक श्रीराम ही बचे।

---

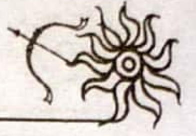
१. पाठक! इस व्याख्या को देखकर चौंके नहीं। ब्रह्मचर्य की शक्ति से यह सम्भव है। वेद में कहा है—

यदाबध्नन् दाक्षयणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥

—अथर्व० १। ३५। १

आचार्य शिष्य को उपदेश करते हैं—मेधावी ज्ञानीजन शुभसंकल्प से युक्त होकर सैकड़ों सेनाओं के बल की प्राप्ति के लिए जिस वीर्य को अपने जीवन में धारण करते हैं, दीर्घ-जीवन, तेज और बल के लिए उसी वीर्य को अपने शरीर में स्थापित करने के लिए मैं तुझे आदेश देता हूँ।

मन्त्र में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि ब्रह्मचर्य से शतानीकाय=सौ सेनाओं का बल प्राप्त होता है। श्रीराम इस ब्रह्मचर्य व्रत में बँधे हुए थे। विवाह के पश्चात् वे १२ वर्ष तक अयोध्या में रहे, १४ वर्ष तक वन में रहे जिसमें १३ वर्ष तक पत्नी साथ थी। २५ वर्ष में एक भी सन्तान उत्पन्न नहीं की। यदि आज का-सा युवक होता तो १०-१२ सन्तानें तो हो ही जातीं।



◀ अष्टादशः सर्गः ▶ (१८)

त्रिशिरा का वध और खर के साथ युद्ध—

खरं तु रामाभिमुखं प्रयान्तं वाहिनीपतिः।
राक्षसस्त्रिशिरा नाम सन्निपत्येदमब्रवीत्॥ १॥

खर को युद्ध करने के लिए राम के सम्मुख जाते देख त्रिशिरा नामक सेनापति खर के पास जाकर बोला—

मां नियोजय विक्रान्तं सन्निवर्तस्व साहसात्।
पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम्॥ ३॥

हे स्वामिन्! आप इस साहस के कार्य से रुकिए ओर अपने बदले मुझ पराक्रमी को राम से लड़ने के लिए नियुक्त कीजिए। देखिए! मैं इस महाबाहु राम को युद्ध में मारकर अभी गिराये देता हूँ।

खरस्त्रिशिरसा तेन मृत्युलोभात्प्रसादितः।
गच्छ युध्येत्यनुज्ञातो राघवाभिमुखो ययौ॥ ३॥

त्रिशिरा ने श्रीराम की मृत्यु का लालच दिखा खर को सन्तुष्ट कर लिया और ''जाओ, लड़ो'' ऐसी आज्ञा पाकर राम से युद्ध करने के लिए चल पड़ा।

आगच्छन्तं त्रिशिरसं राक्षसं प्रेक्ष्य राघवः।
धनुषा प्रतिजग्राह विधुन्वन् सायकाञ्शितान्॥ ४॥

श्रीराम ने त्रिशिरा को अपनी ओर आते देख धनुष को टंकार कर उस पर तीखे बाण छोड़ते हुए उसे रोका।

स संप्रहारस्तुमुलो रामत्रिशिरसोर्महान्।
बभूवातीव बलिनोः सिंहकुञ्जरयोरिव॥ ५॥

श्रीराम और त्रिशिरा का वह तुमुल युद्ध बड़ा भयंकर था। ऐसा प्रतीत होता था मानो अति बलशाली सिंह और गजराज लड़ रहे हों।

ततस्त्रिशिरसा बाणैर्ललाटे ताडितस्त्रिभिः।
अमर्षी कुपितो रामः संरब्धमिदमब्रवीत्॥ ६॥

जब त्रिशिरा ने श्रीराम के माथे पर तीन बाण मारे तब बाण के प्रहार से कुपित और उसे सहन न करनेवाले श्रीराम ने क्रुद्ध होकर त्रिशिरा से कहा—

अहो विक्रमशूरस्य राक्षसस्येदृशं बलम्।
पुष्पैरिव शरैर्यस्य ललाटेऽस्मि परिक्षतः॥ ७॥

अहो! क्या विक्रमी, शूर-राक्षस में इतना ही बल है कि उसके मारे हुए बाण मेरे मस्तक में फूलों के समान स्पर्श कर रहे हैं।

एवमुक्त्वा तु संरब्धः शरानाशीविषोपमान्।
त्रिशिरोवक्षसि क्रुद्धो निजधान चतुर्दश॥ ८॥

यह कहकर जोशीले राम ने कुपित होकर विषधर सर्प के समान चौदह बाण त्रिशिरा की छाती में मारे।

चतुर्भिस्तुरगानस्य शरैः सन्नतपर्वभिः।
न्यपातयत तेजस्वी चतुरस्तस्य वाजिनः॥ ९॥

फिर तेजस्वी राम ने सन्नतपर्व नामक चार बाणों से त्रिशिरा के चारों घोड़ों को मार गिराया।

अष्टभिः सायकैः सूतं रथोपस्थान्न्यपातयत्।
रामश्चिच्छेद बाणेन ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम्॥ १०॥

तत्पश्चात् श्रीराम ने आठ बाण मारकर त्रिशिरा के सारथि को मारकर रथ से नीचे गिरा दिया और एक बाण मारकर उसके रथ की ऊँची ध्वजा को भी काट दिया।

ततो हतरथात्तस्मादुत्पतन्तं निशाचरम्।
बिभेद रामस्तं बाणैर्हृदये सोऽभवज्जडः॥ ११॥

घोड़ों और सारथि के मारे जाने पर जब त्रिशिरा रथ से कूदने लगा तब राम ने बाणों से उसके हृदय को विदीर्ण कर डाला और वह निश्चेष्ट हो गया।

निहितं दूषणं दृष्ट्वा रणे त्रिशिरसा सह।
खरस्याप्यभवत्त्रासो दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम्॥ १२॥

संग्राम में त्रिशिरा और दूषण को मरा हुआ देख खर श्रीराम के पराक्रम से भयभीत हो गया।

तद्बलं हतभूयिष्ठं विमनाः प्रेक्ष्य राक्षसः।
आससाद खरो रामं पतङ्ग इव पावकम्॥ १३॥



उस राक्षसी सेना का और चुने हुए वीर राक्षसों को मरा हुआ देख खर उदास हुआ, फिर अपने कर्तव्य का निश्चय कर वह राम के ऊपर ऐसे ही झपटा जैसे पतङ्ग अग्नि के ऊपर झपटता है।

ततोऽस्य सशरं चापं मुष्टिदेशे महात्मनः।
खरश्चिच्छेद रामस्य दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ १४॥

खर ने राम के समीप पहुँचकर अपना हस्तलाघव दिखाते हुए महात्मा राम के धनुष को उस स्थान से काटा डाला जहाँ से वे उसे पकड़े हुए थे।

सुमहद्वैष्णवं यत्तदतिसृष्टं महर्षिणा।
वरं तद्धनुरुद्यम्य खरं समभिधावत॥ १५॥

तब श्रीराम महर्षि अगस्त्य द्वारा प्रदत्त वैष्णव नामक श्रेष्ठ धनुष को उठाकर खर की ओर झपटे।

ततः कनकपुङ्खैस्तु शरैः सन्नतपर्वभिः।
बिभेद रामः संक्रुद्धः खरस्य समरे ध्वजम्॥ १६॥

स्वर्णपुंख और सन्नतपर्व बाणों से क्रुद्ध राम ने संग्राम में खर के रथ की ध्वजा काट डाली।

तं चतुर्भिः खरः क्रुद्धो रामं गात्रेषु मार्गणः।
विव्याध युधि मर्मज्ञो मातङ्गमिव तोमरैः॥ १७॥

तब मर्मस्थलों को जाननेवाले खर ने क्रुद्ध होकर चार बाणों से श्रीराम के हृदय और अन्य मर्मस्थलों को वैसे ही बेध डाला जैसे भालों से हाथी बेधा जाता है।

स रामो बहुभिर्बाणैः खरकार्मुकनिसृतैः।
विद्धो रुधिरसिक्ताङ्गो बभूव रुषितो भृशम्॥ १८॥

खर के धनुष से छूटे हुए बहुत-से बाणों के लगने से श्रीराम आहत हो गये। उनके अङ्ग रक्त से सराबोर हो गये, अतः वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए।

ततः पश्चान्महातेजा नाराचान् भास्करोपमान्।
जिघांसू राक्षसं क्रुद्धस्त्रयोदश समाददे॥ १९॥

तत्पश्चात् क्रोध में आये हुए श्रीराम ने सूर्य के समान देदीप्यमान तेरह बाण लेकर खर को मारने की इच्छा से उस पर छोड़े।

ततोऽस्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान्।
षष्ठेन तु शिरः संख्ये खरस्य रथसारथे॥ २०॥
त्रिभिस्त्रिवेणुं बलवान् द्वाभ्यामक्षं महाबलः।
द्वादशेन तु बाणेन खरस्य सशरं धनुः॥ २१॥
छित्त्वा वज्रनिकाशेन राघवः प्रहसन्निव।
त्रयोदशेनेन्द्रसमो बिभेद समरे खरम्॥ २२॥

एक बाण से रथ के जुए को, चार बाणों से चारों घोड़ों को और छठे बाण से खर के सारथि के सिर को, तीन बाणों से रथ के तीन बाँसों को, दो से रथ की धुरी को और बारहवें बाण से खर के बाण सहित धनुष को काटकर इन्द्र के समान तेजस्वी राम ने हँसते हुए, युद्धस्थल में वज्र के समान तेरहवाँ बाण खर को मारा।

प्रभग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवप्लुत्य तस्थो भूमौ खरस्तदा॥ २३॥

धनुष के टूट जाने, रथ के भग्न हो जाने, घोड़े और सारथि के मारे जाने पर खर हाथ में गदा ले रथ से कूद पड़ा और रणभूमि में खड़ा हो गया।

➤ एकोनविंशः सर्गः ➤ (१९)

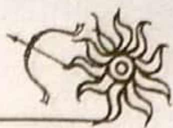
राम द्वारा खर की भर्त्सना और उसकी गदा का भेदन—

खरं तु विरथं दृष्ट्वा रामो गदापाणिमवस्थितम्।
मृदुपूर्वं महातेजाः परुषं वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

रथहीन खर को हाथ में गदा लेकर रणभूमि में अवस्थित देख महातेजस्वी श्रीराम ने उससे न्यायोचित और मर्मस्पर्शी वचन कहे—

गजाश्वरथसंबाधे बले महति तिष्ठता।
कृतं सुदारुणं कर्म सर्वलोकजुगुप्सितम्॥ २॥

हे वीर! हाथी, घोड़ा, रथ आदि से परिपूर्ण विशाल



सेना का स्वामी बनकर तूने सर्वलोक निन्दित और घोर पापकर्म किये हैं।

उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत्।
त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोऽपि न तिष्ठति॥ ३॥

क्या तू नहीं जानता कि प्राणियों को दुःख देनेवाला, निर्दयी और पापकर्म करनेवाला मनुष्य भले ही त्रिलोकी का स्वामी हो, तो भी अधिक दिन नहीं जी सकता।

कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम्॥ ४॥

हे रजनीचर! लोकविरुद्ध मानवीय शान्ति का उन्मूलन करनेवाले अत्याचारी को ऐसे ही मार देना चाहिए जैसे अपने घर में आते हुए विषधर सर्प को सब लोग मार डालते हैं।

लोभात्पापानि कुर्वाणः कामाद्वा यो न बुध्यते।
भ्रष्टाः पश्यति तस्यान्तं ब्राह्मणी करकादिव॥ ५॥

जो मनुष्य! लोभ या काम के वशीभूत होकर पापकर्म करके पश्चात्ताप नहीं करता उसे उस कर्म के फल (ऐश्वर्य) से ऐसे ही भ्रष्ट होना पड़ता है (उसका अन्त उसी प्रकार होता है) जैसे चार पैरवाला ब्राह्मणी कीट (राम की बुढ़िया) वृष्टि के ओलों को खाकर अपना अन्त कर लेता है।

वसतो दण्डकारण्ये तापसान् धर्मचारिणः।
किन्नु हत्वा महाभागान् फलं प्राप्स्यसि राक्षस॥ ६॥

हे राक्षसाधम! इस दण्डक वन में रहनेवाले, धर्माचरण में रत, निरपराध तपस्वियों को मारने का फल तुझे भोगना ही होगा, क्या तू यह नहीं जानता था?

न चिरं पापकर्माणः क्रूरा लोकजुगुप्सिताः।
ऐश्वर्यं प्राप्य तिष्ठन्ति शीर्णमूला इव द्रुमाः॥ ७॥

पापी, क्रूर और लोकनिन्दित मनुष्य ऐश्वर्य पाकर भी चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकते जैसे गली-सड़ी जड़वाले वृक्ष बहुत देर तक नहीं ठहरते।

अवश्यं लभते जन्तुः फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्यागते काले द्रुमाः पुष्पमिवार्तवम्॥ ८॥

जैसे ऋतु के आने पर वृक्ष स्वयं पुष्पित हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार समय आने पर जीवों को उनके लिए पापकर्मों को घोर फल अवश्य प्राप्त होता है।

न चिरात्प्राप्यते लोके पापानां कर्मणां फलम्।
सविषाणामिवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर॥ ९॥

हे निशाचर! जैसे विषमिश्रित अन्न खाने से मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है उसी प्रकार पापी को किये हुए पापों का फल प्राप्त होने में विलम्ब नहीं होता।

पापमाचरतां घोरं लोकस्याप्रियमिच्छताम्।
अहमासादितो राज्ञा प्राणान्हन्तुं निशाचर॥ १०॥

हे निशाचर! घोर पापकर्म करनेवाले और लोक का अमङ्गल करनेवाले पापचारियों के वध के लिए ही मुझे महाराज दशरथ ने वन में भेजा है।

अद्य हि त्वां मया मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः।
विदार्य निपतिष्यन्ति वल्मीकमिव पन्नगाः॥ ११॥

मेरे द्वारा छोड़े गये ये स्वर्णभूषित बाण तेरे शरीर को छिन्न-भिन्न कर पृथिवी में ऐसे ही घुसेंगे जैसे सर्प अपनी बाँबी में घुसता है।

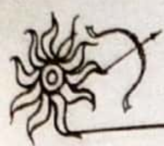
प्रहर त्वं यथाकामं कुरु यत्नं कुलाधम।
अद्य ते पातयिष्यामि शिरस्तालफलं यथा॥ १२॥

अरे कुलाधम! मुझे मारने के लिए तुझे जो उपाय करना हो वह कर ले और यथेष्ट प्रहार भी कर ले। अन्त में तो मैं तेरे सिर को ताड़ के वृक्ष के समान काट कर गिरा दूँगा।

एवमुक्तस्तु रामेण क्रुद्धः संरक्तलोचनः।
प्रत्युवाच खरो रामं प्रहसन् क्रोधमूर्छितः॥ १३॥

श्रीराम के ऐसा कहने पर खर क्रोध के मार लाल-लाल आँखें निकाल तथा तिस्कार-सूचक हँसी हँसता हुआ क्रुद्ध होकर बोला—

प्राकृतान् राक्षसान् हत्वा युद्धे दशरथात्मज।
आत्मना कथमात्मानमप्रशस्यं प्रशंससि॥ १४॥



हे दशरथनन्दन! संग्राम में साधारण राक्षसों को मार कर प्रशंसनीय न होने पर भी तुम अपने मुख से अपनी प्रशंसा क्यों कर रहे हो?

विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः।
कथयन्ति न ते किञ्चत्तेजसा स्वेन गर्विताः॥ १५॥

जो पराक्रमी, बलवान् और तेजस्वी पुरुष होते हैं वे अपने प्रताप से गर्वित होकर अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते।

न तु मामिह तिष्ठन्तं पश्यसि त्वं गदाधरम्।
धराधरमिवाकम्प्यं पर्वतं धातुभिश्चितम्॥ १६॥

हे राम! नाना प्रकार की धातुओं से चित्रित अकम्प पर्वत के समान अचल एवं अटल गदा हाथ में लेकर लड़ने के लिए उद्यत क्या तुम मुझे और मेरी शक्ति को नहीं देख रहे?

पर्याप्तोऽहं गदापाणिर्हन्तुं प्राणान् रणे तव।
त्रयाणामपि लोकानां पाशहस्त इवान्तकः॥ १७॥

मैं अपने हाथ में गदा लेकर पाशधारी यमराज की भाँति युद्ध में केवल तेरा ही नहीं, अपितु तीनों लोकों का संहार कर सकता हूँ।

कामं बह्वपि वक्तव्यं त्वयि वक्ष्यामि न त्वहम्।
अस्तं गच्छेद्धि सविता युद्धविघ्नस्ततो भवेत्॥ १८॥

यद्यपि तुम्हारी आत्मश्लाघा के उत्तर में मैं भी बहुत कुछ कह सकता हूँ तथापि मैं तुमसे अब और कुछ कहना नहीं चाहता, क्योंकि कहने-सुनने में समय निकाल कर यदि सूर्यास्त हो गया तो युद्ध में विघ्न होगा, अर्थात् युद्ध बन्द हो जायेगा।

चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां हतानि ते।
त्वद्विनाशात्करोम्येष तेषामस्त्रप्रमार्जनम्॥ १९॥

तुमने जो चौदह सहस्र राक्षसों को मारा है सो अब मैं तुम्हें मारकर उनकी विधवा स्त्रियों और अनाथ बच्चों के आसूँ पोंछूँगा।

इत्युक्त्वा परमक्रुद्धस्तां गदां परमाङ्गदः।
खरश्चिक्षेप रामाय प्रदीप्तामशनिं यथा॥ २०॥

ऐसा कहकर खर ने अत्यन्त क्रुद्ध हो वज्र के समान जाज्वल्यमान अपनी भीषण गदा से राम के ऊपर प्रहार किया।

तामापतन्तीं ज्वलितां मृत्युपाशोपमां गदाम्।
अन्तरिक्षगतां रामश्चिच्छेद बहुधा शरैः॥ २१॥

मृत्युपाश के समान अपने ऊपर आती हुई उस चमचमाती गदा को श्रीराम के अनेक बाणों से आकाश में ही छिन्न-भिन्न कर दिया।

◀ विंशः सर्गः ▶ (२०)

खर का वध—

भित्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः।
स्मयमानः खरं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत्॥ १॥

धर्मवत्सल श्रीराम अपने बाणों से उस गदा को नष्ट कर, घबराये हुए खर से उपहासपूर्वक बोले—

एतत्ते बलसर्वस्वं दर्शितं राक्षसाधम।
शक्तिहीनतरो मत्तो वृथा त्वमवगर्जसि॥ २॥

हे राक्षसाधम! क्या यही तुम्हारा सम्पूर्ण बल था जिसे तुमने गदा फेंककर दिखाया है। अब तो तुझे पता लगा गया कि तू शक्ति में मुझसे हीन है और तेरा डींग मारना व्यर्थ है।

यत्त्वयोक्तं विनष्टानामहमश्रुप्रमार्जनम्।
राक्षसानां करोमीति मिथ्या तदपि ते वचः॥ ३॥

तूने जो कहा था कि—"मैं तुझे मारकर राक्षसों की विधवाओं और अनाथ बच्चों के आँसू पोंछूँगा" —तेरी वह प्रतिज्ञा भी झूठी हो गई।

नीचस्य क्षुद्रशीलस्य मिथ्यावृत्तस्य रक्षसः।
प्राणानपहरिष्यामि गरुत्मानमृतं यथा॥ ४॥



जैसे गरुत्मान् ने अमृत का हरण किया था वैसे ही आज मैं भी तुझ नीच, क्षुद्रस्वभाव और मिथ्याचरण करनेवाले राक्षस का प्राण हरण करूँगा।

प्रविद्धनिद्रे शयिते त्वयि राक्षसपांसने।
भविष्यन्त्यशरण्यानां शरण्या दण्डका इमे॥ ५॥

अरे राक्षसाधम! जब तू महानिद्रा में सो जायेगा तब दण्डक वन आर्त्त-ऋषियों के लिए सुख से निवास करने योग्य स्थान बन जायेगा।

अद्य विप्रसरिष्यन्ति राक्षस्यो हतबान्धवाः।
बाष्पार्द्रवदना दीना भयादन्यभयावहाः॥ ६॥

दूसरों को भयभीत करनेवाली राक्षसियाँ अपने बन्धु-बान्धवों के मारे जाने पर दीनभाव से रोती हुईं और भयभीत होकर आज यहाँ से भाग जायेंगी।

नृशंस नीच क्षुद्रात्मन्नित्यं ब्राह्मणकण्टक।
यत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः पात्यते हविः॥ ७॥

रे निष्ठुर! नीच! ब्राह्मणों के द्वेषी, क्षुद्रात्मा! तुम्हारे भय के कारण मुनि लोग निःशंक होकर यज्ञ भी नहीं कर पाते।

तमेवमभिसंरब्धं ब्रुवाणं राघवं रणे।
खरो निर्भर्त्सयामास रोषात्खरतरस्वनः॥ ८॥

जब क्रुद्ध हो श्रीराम ने खर से ऐसे वचन कहे तब खर भी कुपित हो, उच्च स्वर से राम की भर्त्सना करते हुए बोला—

दृढं खल्ववलिप्तोऽसि भयेष्वपि च निर्भयः।
वाच्यावाच्यं ततो हि त्वं मृत्युवश्यो न बुध्यसे॥ ९॥

निश्चय ही तू बड़ा अभिमानी है जो भय के उपस्थित होने पर भी निर्भय-सा बना हुआ है। तेरी मृत्यु निकट है, इसीलिए तुझे बोलते हुए यह भी समझ में नहीं आता कि क्या कहना चाहिए और क्या नहीं।

कालपाशपरिक्षिप्ता भवन्ति पुरुषा हि ये।
कार्याकार्यं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः॥ १०॥

कालपाश में बँधे हुए मनुष्य को कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता, क्योंकि उसकी अन्तःकरण आदि छहों इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो जाती है।

एवमुक्त्वा ततो रामं संरुध्य भ्रुकुटिं ततः।
स ददर्श महासालमविदूरे निशाचरः॥ ११॥

राम को ऐसा कहकर और भौंहें तानकर उस खर ने निकट ही साल का एक बहुत बड़ा वृक्ष देखा।

तं समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां विनद्य च महाबलः।
राममुद्दिश्य चिक्षेप हतस्त्वमिति चाब्रवीत॥ १२॥

उस वृक्ष को उखाड़ और घोर गर्जना कर खर ने उस वृक्ष को दोनों भुजाओं से उठाकर राम के ऊपर यह कहकर फेंका—''बस, अब तू मारा गया।''

तमापतन्तं बाणौघैश्छित्त्वा रामः प्रतापवान्।
रोषमाहारयत्तीव्रं निहन्तुं समरे खरम्॥ १३॥

प्रतापी राम ने उस साल वृक्ष को अपनी ओर आते देख उसे बाणों से छिन्न-भिन्न कर डाला और संग्राम में खर का वध करने के लिए भयंकर क्रोध किया।

जातस्वेदस्ततो रामो रोषाद्रक्तान्तलोचनः।
निर्बिभेद सहस्रेण बाणानां समरे खरम्॥ १४॥

उस समय श्रीराम पसीने से तर हो रहे थे और क्रोध के कारण उनकी आँखें लाल हो रही थीं, अतः उन्होंने एक साथ अनेक बाणों से खर को युद्ध में बुरी तरह छेद डाला।

विह्वलः स कृतो बाणैः खरो रामेण संयुगे।
मत्तो रुधिरगन्धेन तमेवाभ्याद्रवद्द्रुतम्॥ १५॥

जब श्रीराम ने उस युद्ध में खर को बाणों के आघात से व्याकुल कर दिया अपने शरीर से निकलते हुए रक्त की गन्ध से मतवाला होकर वह बड़े वेग से राम की ओर झपटा।

तमापन्ततं संरब्धं कृतास्त्रो रुधिराप्लुतम्।
अपासर्पद् द्वि-त्रिपदं किञ्चित्त्वरितविक्रमः॥ १६॥

रक्त से सने हुए क्रोधातुर खर को अपनी ओर आते हुए देख शस्त्रविशारद श्रीराम शीघ्रतापूर्वक अपने स्थान से दो तीन-पग पीछे हट गये। (पीछे हटने का कारण भय नहीं था, अपितु अस्त्र चलाने के लिए पर्याप्त स्थान की आवश्यकता थी।)



ततः पावकसङ्काशं ब्रह्मदण्डमिवापरम्।
सन्दधे चापि धर्मात्मा मुमोच च खरं प्रति॥ १७॥

तत्पश्चात् धर्मात्मा श्रीराम ने दूसरे ब्रह्मदण्ड और अग्नि के समान तेजस्वी एक बाण को धनुष पर रखकर खर के ऊपर छोड़ा।

स विमुक्तो महाबाणो खरस्योरसि चापतत्।
स पपात खरो भूमौ दह्यमानः शराग्निना॥ १८॥

श्रीराम के द्वारा छोड़ा हुआ वह भयंकर प्राण खर की छाती में जाकर लगा। उस बाण से निकली अग्नि से खर दग्ध होकर पृथिवी पर गिर पड़ा और मर गया।

ततो राजर्षयः सर्वे सङ्गताः परमर्षयः।
सभाज्य मुदिता राममिदं वचनमब्रुवन्॥ १९॥

तब दण्डक वन के सब राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि एकत्र हो श्रीराम के पास आये और उनका सम्मान कर प्रसन्न होते हुए बोले—

तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मज।
सुखं धर्मं चरिष्यन्ति दण्डकेषु महर्षयः॥ २०॥

हे दशरथनन्दन राम! राक्षस वधरूपी हमारा यह कार्य तुमने कर दिया। अब इस दण्डकवन में महर्षिगण सुख से धर्मानुष्ठान किया करेंगे।

रामस्योपरि संहृष्टा ववृषुर्विस्मितास्तदा।
अर्धाधिकमुहूर्तेन रामेण निशितैः शरैः॥ २१॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
खरदूषणमुख्यानां निहतानि महाहवे॥ २२॥

उन ऋषियों ने हर्षित हो श्रीराम के ऊपर पुष्प-वृष्टि की। वे ऋषिगण विस्मित थे कि उस महायुद्ध में श्रीराम ने खर-दूषण आदि मुख्य राक्षसोंसहित चौदह सहस्र घोर कर्म करनेवाले राक्षसों को तीन ही घड़ी[1] में कैसे मार डाला।

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणः सह सीतया।
गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्य संविवेशाश्रमं सुखी॥ २३॥

इसी बीच शूरवीर लक्ष्मण सीताजी को साथ लिये हुए गिरिगृहा से निकल कर और श्रीराम के पराक्रम से प्रसन्न होते हुए आश्रम में पहुँचे।

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे॥ २४॥

शत्रुहन्ता एवं महर्षियों को आनन्द देनेवाले श्रीराम को सकुशल देख जनकनन्दिनी सीता प्रसन्न हुई और अपने पति का आलिंगन किया।

➤ एकविंशः सर्गः ➤ (२१)

अकम्पन का रावण को खर-दूषण के वध का समाचार देना और रावण का मारीच के पास पहुँचना—

त्वरमाणस्ततो गत्वा जनस्थानादकम्पनः।
प्रविश्य लंकां वेगेन रावणं वाक्यमब्रवीत्॥ १॥

खर-दूषण आदि राक्षसों के मारे जाने के पश्चात् अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतापूर्वक लंका में गया। वहाँ जाकर वह रावण से बोला—

जनस्थानस्थिता राजन् राक्षसा बहवो हताः।
खरश्च निहतः संख्ये कथञ्चिदहमागतः॥ २॥

हे राजन्! जनस्थान में रहनेवाले बहुत सारे राक्षस खरसहित युद्ध में मारे गये। मैं किसी प्रकार[2] बचकर यहाँ आया हूँ।

एवमुक्तो दशग्रीवः क्रुद्धः संरक्तलोचनः।
अकम्पनमुवाचेदं निर्दहन्निव चक्षुषा॥ ३॥

अकम्पन के ऐसा कहने पर रावण क्रुद्ध होकर

---

१. ढाई घड़ी का एक घण्टा होता हैं, अतः लगभग सवा घण्टा।

२. कथञ्चिद्=किसी प्रकार का भाव भूषण टीकाकार ने यह दर्शाया है कि अकम्पन स्त्री-वेश धारण करके भागा था।



लाल-लाल आँखों से मानो उसे भस्म करते हुए बोला—

केन रम्यं जनस्थानं हतं मम परासुना।
को हि सर्वेषु लोकेषु गतिं चाधिगमिष्यति॥ ४॥

किस मुमूर्षु (मरने की इच्छावाले) ने मेरे रमणीय जनस्थान को नष्ट किया है? ऐसा कौन अभागा है जो संसार में रहना नहीं चाहता?

तथा क्रुद्धं सुग्रीवं कृताञ्जलिरकम्पनः।
भयात्सन्दिग्धया वाचा रावणं याचतेऽभयम्॥ ५॥

रावण को इस प्रकार क्रुद्ध देखकर अकम्पन बहुत डरा और हाथ जोड़कर लड़खड़ाती वाणी से उससे अभय की याचना की।

दशग्रीवोऽभयं तस्मै प्रददौ रक्षसां वरः।
स विस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसन्दिग्धमकम्पनः॥ ६॥

जब राक्षसश्रेष्ठ रावण ने उसे अभयदान दिया तब विश्वस्त होकर अकम्पन ने स्पष्ट रूप से सब वृत्तान्त कहा।

पुत्रो दशरथस्यास्ति सिंहसंहननो युवा।
हतं तेन जनस्थानं खरश्च सहदूषणः॥ ७॥

उसने कहा—महाराज! सिंह के समान सुन्दर शरीर अवयव वाले, तरुण श्रीराम ने, जो दशरथ के पुत्र हैं, जनस्थान में आकर खर और दूषण को मारा है।

अकम्पनवचः श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
जनस्थानं गमिष्यामि हन्तुं रामं सलक्ष्मणम्॥ ८॥

अकम्पन की बात सुन रावण ने कहा—राम और लक्ष्मण को मारने के लिए मैं स्वयं जनस्थान में जाऊँगा।

अथैवमुक्ते वचने प्रोवाचेदमकम्पनः।
शृणु राजन् यथावृत्तं रामस्य बलपौरुषम्॥ ९॥

रावण की बात सुन अकम्पन बोला—हे राजन्! श्रीराम जैसे चरित्रवान्, बलवान् एवं पुरुषार्थी हैं—वह मैं कहता हूँ, आप सुनिए।

असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः।
आपगायाः सुपूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः॥ १०॥

महायशस्वी राम जब क्रुद्ध होकर संग्राम में खड़े हों, तब उनका सामुख्य करना असाध्य है। बाणविद्या में वे ऐसे निष्णात हैं कि जल से पूर्णनदी के प्रवाह को अपने बाणों से रोक सकते हैं।

न हि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं त्वया युधि।
रक्षसां वाऽपि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव॥ ११॥

हे दशग्रीव! युद्ध में तुम राम को नहीं जीत सकते। सम्पूर्ण राक्षसों की सहायता से भी तुम राम पर उसी प्रकार विजय नहीं पा सकते जैसे अधर्मीजन स्वर्ग नहीं पा सकते।

न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि।
अयं तस्य वधोपायस्तं ममैकमनाः शृणु॥ १२॥

मेरे विचार में सब देव और असुर मिलकर भी श्रीराम को नहीं मार सकते। उसके मारने का केवल एक ही उपाय है। वह मैं बताता हूँ, आप ध्यानपूर्वक श्रवण कीजिए।

भार्या तस्योत्तमा लोके सीता नाम सुमध्यमा।
श्यामा समविभक्ताङ्गी स्त्रीरत्नं रत्नभूषिता॥ १३॥

श्रीराम की धर्मपत्नी जिसका नाम सीता है, संसार की स्त्रियों में सर्वाधिक सुन्दर है, उसकी कमर पतली हैं, उसके शरीर का प्रत्येक अङ्ग सुन्दर और सुडौल है। वह युवती है और रत्नजटित आभूषणों से सुभूषित है।

नैव देवी न गन्धर्वी नाप्सरा नाऽपि दानवी।
तुल्या सीमन्तिनी तस्या मानुषीषु कुतो भवेत्॥ १४॥

सौन्दर्य में देव, गन्धर्व, अप्सरा और दानव-जाति में कोई स्त्री उसके तुल्य नहीं है, फिर सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है।

तस्यापहर भार्यां त्वं प्रमथ्य तु महावने।
सीतया रहितः कामी रामो हास्यति जीवितम्॥ १५॥

तुम उस महावन में जा छल-कपट से जैसे भी सम्भव हो उसकी स्त्री को हर लाओ। सीता के वियोग

में वह कामी राम अपने प्राण त्याग देगा।

अरोचयत तद्वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः।
चिन्तयित्वा महाबाहुरकम्पनमुवाच ह॥ १६॥

महाबाहु राक्षसेश्वर रावण को अकम्पन का बतलाया हुआ यह उपाय पसन्द आया। कुछ सोचकर उसने अकम्पन से कहा—

बाढं काल्यं गमिष्यामि ह्येकः सारथिना सह।
आनयिष्यामि वैदेहीमिमां हृष्टो महापुरीम्॥ १७॥

बहुत अच्छा! मैं कल प्रातःकाल अपने सारथि के साथ अकेला जाऊँगा और प्रसन्नतापूर्वक सीता को इस महानगरी लंकापुरी में ले आऊँगा।

अथैवमुक्त्वा प्रययौ खरयुक्तेन रावणः।
स दूरे चाश्रमं गत्वा ताटकेयमुपागमत्॥ १८॥

अकम्पन से ऐसा कहकर रावण खच्चरों से युक्त रथ पर आरूढ़ होकर चला। लम्बी यात्रा करने के पश्चात् वह ताटका-पुत्र मारीच के आश्रम में पहुँचा।

तं स्वयं पूजयित्वा तु आसनेनोदकेन च।
अर्थोपहितया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥ १९॥

आसन, अर्घ्य, उदक=जल आदि के द्वारा मारीच ने स्वयं रावण का सत्कार किया। तदनन्तर उसने रावण के प्रयोजन की बात की।

कच्चित्सुकुशलं राजंल्लोकानां राक्षसेश्वर।
आशङ्केनाथ जाने त्वं यतस्तूर्णमिहागतः॥ २०॥

हे राजन्! राक्षसेश्वर! कहिए राक्षस लोग सकुशल तो हैं? हे नाथ! आपके हड़बड़ा कर यहाँ आने के कारण मुझे राक्षसों के सकुशल होने में सन्देह हो रहा है।

एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः।
ततः पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः॥ २१॥

मारीच के ऐसा पूछने पर महातेजस्वी एवं वाक्यविशारद रावण बोला—

आरक्षो ये हतस्तात रामेणाक्लिष्टकर्मणा।
जनस्थानमवध्यं तत्सर्वं युधि निपातितम्॥ २२॥

हे तात! मृदुकर्म करनेवाले राम ने जनस्थान में रहनेवाले मेरे सभी आरक्षकों (सीमा की रक्षा करनेवालों) को मार दिया है और मेरे अजेय जनस्थान को भी युद्ध में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है।

तस्य मे कुरु साचिव्यं तस्य भार्यापहारणे।
राक्षसेन्द्रवचः श्रुत्वा मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥ २३॥

अब मैं श्रीराम की धर्मपत्नी सीता का अपहरण करूँगा? इस कार्य में आप मेरी सहायता करें। राक्षसराज रावण की यह बात सुनकर मारीच ने कहा—

आख्याता केन सीता सा मित्ररूपेण शत्रुणा।
त्वया राक्षसशार्दूल को न नन्दति नन्दितः॥ २४॥

मित्र के रूप में किस शत्रु ने सीता का परिचय और उसके अपहरण की सम्मति तुम्हें दी है? हे राक्षसशार्दूल! आपके द्वारा सम्मानित वह कौन है जो तुम्हारे ऐश्वर्य की वृद्धि नहीं चाहता, तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर जलता है।

सीतामिहानयस्वेति को ब्रवीति ब्रवीहि मे।
रक्षो लोकस्य सर्वस्य कः शृङ्गं छेत्तुमिच्छति॥ २५॥

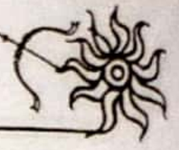
"सीता का अपहरण कर यहाँ ले आओ"— यह बात तुमसे किसने कही है, यह मुझे बताओ। वह कौन है जो सम्पूर्ण राक्षसवंश की कीर्ति और गौरव को नष्ट करना चाहता है?

प्रोत्साहयति कश्च त्वां स हि शत्रुरशंसयः।
आशीविषमुखद्दंष्ट्रामुद्धर्तुं चेच्छति त्वया॥ २६॥

इस निन्दित कर्म के लिए जिसने तुम्हें प्रोत्साहन किया है वह निःसन्देह तुम्हारा शत्रु है, क्योंकि वह तुम्हारे हाथ से विषधर सर्प के मुख में से विषदन्त उखड़वाना चाहता है।

विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्त-
स्तेजोमदः संस्थितदोर्विषाणः।
उदीक्षितुं रावण नेह युक्तः
स संयुगे राघवगन्धहस्ती॥ २७॥

हे रावण! विशुद्ध वंश में उत्पन्न होना ही जिसकी लम्बी सूँड है, प्रताप जिसका मद है, जिसकी दोनों



भुजाएँ ही हाथी के विशाल दाँतों के तुल्य हैं, ऐसे रामरूपी गन्ध हस्ती को संग्राम में कोई देख भी नहीं सकता, लड़ना तो दूर की बात है।

प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र
लङ्कां प्रसन्नो भव साधु गच्छ।
त्वं स्वेषु दारेषु रमस्व नित्यं
रामः सभार्यो रमतां वनेषु॥ २८॥

अतः हे लङ्केश्वर! आप प्रसन्न हों और लङ्का पर कृपा करें। आप प्रसन्नतापूर्वक सीधे लङ्का को लौट जाइए। आप सुमार्गगामी होकर अपनी पत्नियों के साथ रमण करें और श्रीराम प्रसन्न होकर अपनी धर्मपत्नी के साथ विहार करें।

एवमुक्तो दशग्रीवो मारीचेन स रावणः।
न्यवर्तत पुरीं लङ्कां विवेश च गृहोत्तमम्॥ २९॥

मारीच के इस प्रकार समझाने-बुझाने पर दशग्रीव लङ्कापुरी को लौटा और अपने श्रेष्ठ महल में प्रविष्ट हुआ।

❮ द्वाविंशः सर्गः ❯ (२२)

शूर्पनखा का रावण को सीताहरण के लिए उकसाना—

ततः शूर्पणखा दृष्ट्वा सहस्राणि चतुर्दश।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां भीमकर्मणाम्॥ १॥
दूषणं च खरं चैव हतं त्रिशिरसा सह।
जगाम परमोद्विग्ना लङ्कां रावणपालिताम्॥ २॥

जब शूर्पनखा ने देखा कि खर, दूषण और त्रिशिरासहित चौदह सहस्र भयंकर एवं क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसों को युद्ध में अकेले श्रीराम ने मार दिया है तब वह बहुत घबराई और अपने भाई रावण द्वारा रक्षित लङ्का की ओर प्रस्थान किया।

सा ददर्श विमानाग्रे रावणं दीप्ततेजसम्।
उपोपविष्टं सचिवैर्मरुद्भिरिव वासवम्॥ ३॥

वहाँ पहुँचकर शूर्पनखा ने देखा कि सात मञ्जिलवाले राजप्रासाद के अग्रभाग में तेजस्वी रावण ऐसे बैठा हुआ है जैसे देवताओं से घिरा हुआ इन्द्र बैठा हो।

रावणं शत्रुहन्तारं मन्त्रिभिः परिवारितम्।
अभिगम्याब्रवीद्वाक्यं राक्षसी भयविह्वला॥ ४॥

शत्रुहन्ता मन्त्रियों से घिरे हुए रावण के समीप जा, भय से व्याकुल राक्षसी शूर्पनखा ने उससे कहा—

प्रमत्तः कामभोगेषु स्वैरवृत्तो निरङ्कुशः।
समुत्पन्नं भयं घोरं बोद्धव्यं नावबुध्यसे॥ ५॥

हे रावण! नीति-मर्यादा को त्याग निरङ्कुश होकर तुम कामभोगों में प्रवृत्त होकर मतवाला हो रहे हो, अतः राक्षसजाति पर जो घोर संकट इस समय उपस्थित है, जिसे तुम्हें जानना चाहिए तुम उससे सर्वथा असावधान हो।

आत्मवद्भिर्विगृह्य त्वं देवगन्धर्वदानवैः।
अयुक्तचारश्चपलः कथं राजा भविष्यसि॥ ६॥

एक तो तुम चञ्चल हो, दूसरे तुम यत्न करने में असावधान हो, तीसरे तुम दूतों के सञ्चार से हीन हो (अर्थात् तुम्हारे दूत सर्वत्र नियुक्त नहीं हैं।) फिर तुम जितेन्द्रिय देव-दानव और गन्धर्वों का विरोध कर राज्य कैसे कर सकते हो?

येषां चारश्च कोशश्च नयश्च जयतां वर।
अस्वाधीना नरेन्द्राणां प्राकृतैस्ते जनैः समाः॥ ७॥

हे विजेताओं में श्रेष्ठ रावण! जिन राजाओं के गुप्तचर, कोश और राजनीति उनके अपने अधीन नहीं हैं (जो मन्त्रियों पर निर्भर हैं) वे राजा राजा न होकर साधारण जनों की कोटि में आ जाते हैं।

यस्मात्पश्यन्ति दूरस्थान् सर्वानर्थान् नराधिपाः।
चारेण तस्मादुच्यन्ते राजानो दीर्घचक्षुषः॥ ८॥



राजा लोग दूर देशों के समस्त वृत्तान्तों को गुप्तचरों के द्वारा जानते रहते हैं, इसीलिए उन्हें दीर्घचक्षु कहते हैं।

अयुक्तचारं मन्ये त्वां प्राकृतैः सचिवैर्वृत्तम्।
स्वजनं तु जनस्थानं हतं यो नावबुध्यसे॥ ९॥

साधारण बुद्धिवाले मन्त्रियों से घिरे हुए तुम्हारा कोई गुप्तचर विभाग दिखाई नहीं देता, इसीलिए जनस्थानवासी अपने कुटुम्बियों के वध का समाचार भी तुम्हें ज्ञात नहीं।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां क्रूरकर्मणाम्।
हतान्येकेन रामेण खरश्च सहदूषणः॥ १०॥

खर और दूषणसहित चौदह सहस्र क्रूरकर्मा राक्षसों को अकेले श्रीराम ने मार डाला।

ऋषीणामभयं दत्तं कृतक्षेमाश्च दण्डकाः।
धर्षितं च जनस्थानं रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ ११॥

इतना ही नहीं धर्मात्मा राम ने जनस्थान का विध्वंस कर दण्डक वन को आतंकरहित कर दिया है और ऋषियों को अभय प्रदान किया है।

त्वं तु लुब्धः प्रमत्तश्च पराधीनश्च रावण।
विषये स्वे समुत्पन्नं भयं यो नावबुध्यसे॥ १२॥

हे रावण! तू कामलोलुप, मदमत्त और पराधीन होने के कारण अपने राज्य के ऊपर आये हुए संकट को भी नहीं समझता।

नानुतिष्ठति कार्याणि भयेषु न बिभेति च।
क्षिप्रं राज्याच्च्युतो दीनस्तृणैस्तुल्यो भविष्यति॥ १३॥

जो राजा अपने कर्तव्य का यथावत् पालन नहीं करता और भय उपस्थित होने पर उसका प्रतिकार नहीं करता ऐसा भाग्यहीन राजा शीघ्र ही राज्य से च्युत हो जाता है तथा प्रजा की दृष्टि में वह तिनके के समान तुच्छ हो जाता है।

ततः शूर्पणखां क्रुद्धां ब्रुवन्तीं परुषं वचः।
अमात्यमध्ये संक्रुद्धः परिपप्रच्छ रावणः॥ १४॥

तदनन्तर क्रोध में भरकर कठोर वचन कहनेवाली शूर्पनखा से, मन्त्रिमण्डल के मध्य वर्तमान रावण ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर पूछा—

कश्च रामः कथंवीर्यः किं रूपं किं पराक्रमः।
किमर्थं दण्डकारण्यं प्रविष्टः स दुरासदम्॥ १५॥

यह राम कौन है? इसका बल किस प्रकार का है, उसका रूप और पराक्रम कैसा है और वह इस दुर्गम दण्डक वन में क्यों आया है?

इत्युक्तो राक्षसेन्द्रेण राक्षसी क्रोधमूर्च्छिता।
ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥ १६॥

राक्षसराज रावण के ऐसा पूछने पर क्रोध से मूर्च्छित शूर्पनखा ने राम का यथार्थ वृत्तान्त कहना आरम्भ किया—

दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः।
कन्दर्पसमरूपश्च रामो दशरथात्मजः॥ १७॥

दशरथनन्दन श्रीराम दीर्घबाहु, विशाल, नेत्र, चीर और काले मृग का चर्म धारण किये हुए हैं। वे कामदेव के समान सुन्दर हैं।

भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्॥ १८॥

उनका छोटा भाई लक्ष्मण अत्यन्त पराक्रमी और महातेजस्वी है। गुण और पराक्रम में वह अपने भाई के तुल्य ही है। वह उसका भक्त और अनुरक्त है।

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तो बुद्धिमान् बली।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्यं प्राणो बहिश्चरः॥ १९॥

वह लक्ष्मण, क्रोधी, दुर्जेय, विजयी, पराक्रमी, बुद्धिमान् और बलवान् है। वह राम का दाहिना हाथ और शरीर से बाहर रहनेवाला राम का प्राण ही है।

रामस्य तु विशालाक्षी पुर्णेन्दुसदृशानना।
धर्मपत्नी प्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते रता॥ २०॥

पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुखवाली, विशाल नेत्रोंवाली, सदा पति के हित में रत रहनेवाली श्रीराम की धर्मपत्नी उन्हें अत्यन्त प्रिय है।

नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किन्नरी।
नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले॥ २१॥

उसके सौन्दर्य की टक्कर की न तो कोई देवी है,



न कोई गन्धर्वी न कोई यक्षिणी और न ही कोई किन्नरी। इस पृथिवी तल पर मैंने ऐसी सुन्दरी स्त्री इससे पहले कभी नहीं देखी।

सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि।
तवानुरूपा भार्या स्यात्त्वं च तस्यास्तथा पतिः॥ २२॥

वह सीता, सुन्दर शरीरवाली और भूतल पर अनुपम सुन्दरी है। वह तुम्हारी भार्या होने योग्य है और तुम उसके पति होने योग्य हो।

भार्यार्थे तु तवानेतुमुद्यताहं वराननाम्।
विरूपितास्मि क्रूरेण लक्ष्मणेन महाभुज॥ २३॥

हे विशालभुज! जब मैं उस अनिन्द्य सुन्दरी सीता को तेरी भार्या बनाने के लिए लाने को उद्यत हुई तब निर्दयी लक्ष्मण ने मेरे दोनों कान और नाक काट डाली।

रोचते यदि ते वाक्यं ह्रियतामबला बलात्।
सीता सर्वानवद्याङ्गी भार्यार्थे राक्षसेश्वर॥ २४॥

हे राक्षसेश्वर! यदि तुम्हें मेरी बात रुचिकर लगे तो उस सर्वाङ्ग सुन्दरी अबला सीता को अपनी स्त्री बनाने के लिए बलपूर्वक हर लाओ।

➤ त्रयोविंशः सर्गः ➤ (२३)

रावण का पुनः मारीचाश्रम में जाना—

ततः शूर्पणखावाक्यं तत् श्रुत्वा रोमहर्षणम्।
सचिवानभ्यनुज्ञाय कार्यं बुद्ध्वा जगाम सः॥ १॥

शूर्पनखा के उन रोमाञ्चकारी वचनों को सुन, मन्त्रियों से इस विषय में विचार-विमर्श कर तथा उन्हें विदा कर और अपने कर्तव्य का निश्चय कर रावण जाने के लिए तैयार हुआ।

काञ्चनं रथमास्थाय कामगं रत्नभूषितम्।
राक्षसाधिपतिः श्रीमान् ययौ नदनदीपतिम्॥ २॥

इच्छानुसार चलनेवाले, रत्नजटित काञ्चनरथ पर बैठकर राक्षसराज रावण समुद्र की ओर प्रस्थानित हुआ।

तं तु गत्वा परं पारं समुद्रस्य नदीपतेः।
ददर्शाश्रममेकान्ते रम्ये पुण्ये वनान्तरे॥ ३॥
तत्र कृष्णाजिनधरं जटावल्कलधारिणम्।
ददर्श नियताहारं मारीचं नाम राक्षसम्॥ ४॥

समुद्र के उस पार जाकर रावण ने वन के मध्य, एकान्त में एक रमणीय पुण्याश्रम को देखा। उस आश्रम में कृष्णमृगचर्म ओढ़े हुए, सिर पर जटा धारण किये हुए और नियत आहार करनेवाले मारीच नामक राक्षस को भी उसने देखा।

विशेष—कुछ लोगों के मतानुसार आधुनिक मुंबई नगरी ही मारीच के रहने का स्थान था, इसीलिए वह मोहमयीपुर कहलाता है।

स रावणः समागम्य विधिवत्तेन रक्षसा।
अर्थोपहतया वाचा मारीचो वाक्यमब्रवीत्॥ ५॥

रावण के वहाँ पहुँचने पर उसका विधिवत् स्वागत-सत्कार कर मारीच ने उससे यह अर्थयुक्त वचन कहा—

कच्चित्सुकुशलं राजंल्लङ्कायां राक्षसेश्वर।
केनार्थेन पुनस्त्वं वै तूर्णमेवमिहागतः॥ ६॥

हे राक्षसराज! कहिए लङ्का में कुशल तो है? तुम्हारे पुनः इतनी शीघ्र यहाँ आने का कारण क्या है?

एवमुक्तो महातेजा मारीचेन स रावणः।
तं तु पश्चादिदं वाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः॥ ७॥

जब मारीच ने ऐसा कहा तब महातेजस्वी, बातचीत करने में पटु रावण ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

मारीच श्रूयतां तात वचनं मम भाषतः।
आर्तोऽस्मि मम चार्तस्य भवान्हि परमा गतिः॥ ८॥

हे तात मारीच! मैं जो कहता हूँ उसे आप सुनो।



मैं इस समय बहुत दुःखी हूँ और इस समय आप ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं।

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसामुग्रतेजसाम्।
निहतानि शरैस्तीक्ष्णैर्मानुषेण पदातिना ॥ ९ ॥

पैदल चलनेवाले मनुष्य राम ने अपने तीक्ष्ण बाणों से चौदह उग्रकर्मा राक्षसों को मार डाला।

खरश्च निहतः संख्ये दूषणश्च निपातितः।
हतश्च त्रिशिरश्चापि निर्भया दण्डकाः कृताः ॥ १० ॥

इतना ही नहीं उस राम ने युद्ध में खर-दूषण और त्रिशिरा को भी मार दिया तथा दण्डक-वनवासियों को निर्भय कर दिया।

पित्रा निरस्तः क्रुद्धेन सभार्यः क्षणजीवितः।
स हन्ता तस्य सैन्यस्य रामः क्षत्रियपांसनः ॥ ११ ॥

जिस क्षणजीवी राम को पिता ने क्रुद्ध होकर स्त्रीसहित राजधानी से बाहर निकाल दिया, क्षत्रियकुलकलंक उसी राम ने इस समस्त सेना का संहार किया है।

दुःशीलः कर्कशस्तीक्ष्णो मूर्खो लुब्धोऽजितेन्द्रियः।
त्यक्त्वा धर्ममधर्मात्मा भूतानामहिते रतः ॥ १२ ॥

वह चरित्रहीन, कर्कश, तीक्ष्ण स्वभाववाला, मूर्ख, लोभी और अजितेन्द्रिय है। धर्म को त्यागकर वह अधर्मात्मा सदा प्राणियों का अहित किया करता है।

येन वैरं विनारण्ये सत्त्वमाश्रित्य केवलम्।
कर्णनासापहरणाद्भगिनी मे विरूपिता ॥ १३ ॥

उसने बिना वैर ही केवल अपने बल के घमण्ड में मेरी बहन की नाक और कान काटकर उसे कुरूप बना दिया है।

तस्य भार्यां जनस्थानात्सीतां सुरसुतोपमाम्।
आनयिष्यामि विक्रम्य सहायस्तत्र मे भव ॥ १४ ॥

इसके बदले मैं देवकन्या के तुल्य कमनीय कान्तिवाली उसकी भार्या सीता को उठा लाऊँगा। आप इस कार्य में मेरी सहायता करें।

वीर्ये युद्धे च दर्पे च न ह्यस्ति सदृशस्तव।
उपायज्ञो महाञ्शूरः सर्वमायाविशारदः ॥ १५ ॥

पराक्रम में, युद्ध में और मान-मर्दन में तुम्हारे सदृश और कोई नहीं है। तुम उपाय जाननेवाले, शूरवीर और मायाविशारद=रूप और बोली बदलने में पण्डित हो।

एतदर्थमहं प्राप्तस्त्वत्समीपं निशाचर।
शृणु तत्कर्म साहाय्ये यत्कार्यं वचनान्मम ॥ १६ ॥

हे निशाचर! इसीलिए मैं तेरे पास आया हूँ। अब तुम्हें मेरी जो सहायता करनी पड़ेगी वह मैं बताता हूँ, सुनो।

सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतयाः प्रमुखे चर ॥ १७ ॥

तुम रजत=चाँदी के बिन्दुओं से चित्रित सोने का मृग बनकर राम के आश्रम में जाकर सीता के समक्ष विचरो।

त्वां तु निःसंशयं सीता दृष्ट्वा तु मृगरूपिणाम्।
गृह्यतामिति भर्तारं लक्ष्मणं चाभिधास्यति ॥ १८ ॥

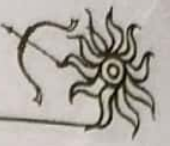
मृगरूपधारी तुम्हें देखकर सीता निश्चय ही अपने पति राम और देवर लक्ष्मण से कहेगी कि इस हिरण को पकड़ लाओ।

ततस्तयोरपाये तु शून्ये सीतां यथासुखम्।
निराबाधो हरिष्यामि राहुश्चन्द्रप्रभामिव ॥ १९ ॥

जब राम-लक्ष्मण तुझे पकड़ने के लिए आश्रम से दूर चले जायेंगे तब मैं उस आश्रम में जा बिना किसी बाधा के सुखपूर्वक सीता का उसी प्रकार अपहरण करूँगा जैसे राहु चन्द्रमा की प्रभा का अपहरण करता है।

तस्य रामकथां श्रुत्वा मारीचस्य महात्मनः।
शुष्कं समभवद्वक्त्रं परित्रस्तो बभूव ह ॥ २० ॥

रावण के मुख से महात्मा राम की चर्चा सुनकर मारीच का मुख सूख गया और वह भय से संत्रस्त हो गया।



चतुर्विंशः सर्गः (२४)

मारीच का हितोपदेश—

तत् श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो मारीचो राक्षसेश्वरम्॥ १॥

महाप्राज्ञ राक्षसराज रावण की बातों को सुनकर बातचीत करने में चतुर मारीच ने कहा—

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ २॥

हे राजन्! संसार में निरन्तर प्रिय बोलनेवाले लोग सदा सुलभ हैं, परन्तु कहने में अप्रिय किन्तु वास्तव में हितकारी वचनों के कहने और सुननेवाले लोग संसार में दुर्लभ हैं।

न नूनं बुध्यसे रामं महावीर्यं गुणोन्नतम्।
अयुक्तचारश्चपलो महेन्द्रवरुणोपमम्॥ ३॥

गुप्तचरों की नियुक्ति न करने और चञ्चल स्वभाव के कारण, महापराक्रमी श्रेष्ठ गुणवाले, इन्द्र तथा वरुण के तुल्य राम को आप निश्चय ही नहीं जानते।

न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथञ्चन।
न लुब्धो न च दुःशीलो न च क्षत्रियपांसनः॥ ४॥

न तो श्रीराम को उनके पिता ने निकाला है, न वे किसी प्रकार से मर्यादाहीन हैं, न वह लोभी हैं, न वह आचारहीन हैं और न ही क्षत्रिय-कुलकलंक हैं।

न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः।
न तीक्ष्णो न च भूतानां सर्वेषामहिते रतः॥ ५॥

कौसल्या के आनन्द को बढ़ानेवाले राम धर्म और सद्गुणों से रहित नहीं हैं, न वह उग्रस्वभाव हैं और न ही प्राणियों को सताते हैं, अपितु वह तो सबके हितैषी हैं।

न रामः कर्कशस्तात नाविद्वान्नाजितेन्द्रियः।
अनृतं दुःश्रुतं चैव नैव त्वं वक्तुमर्हसि॥ ६॥

हे रावण! राम न तो कठोर-हृदय हैं, न मूर्ख और न ही अजितेन्द्रिय हैं, उनके विषय में तुमने जो अनर्गल प्रलाप किया है वह तुम्हें नहीं करना चाहिए।

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानां मघवानिव॥ ७॥

राम धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं, वह साधु-स्वभाव और सत्यपराक्रमी हैं। जिस प्रकार इन्द्र देवताओं के राजा हैं उसी प्रकार राम सम्पूर्ण लोक के स्वामी हैं।

कथं त्वं तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा।
इच्छसि प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः॥ ८॥

अपने पतिव्रत धर्म से स्वयं ही रक्षित तथा राम के तत्त्वावधान में सुरक्षित सूर्य की प्रभा के सदृश सीता को तुम बलात् कैसे हरण करना चाहते हो?

शरार्चिषमनाधृष्यं चापखड्गेन्धनं रणे।
रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं त्वमर्हसि॥ ९॥

असह्य बाणरूपी ज्वाला से युक्त, स्पर्श के अयोग्य, धनुष और तलवार रूपी ईंधन से युक्त रामरूपी प्रदीप्त अग्नि में कूदने का दुःसाहस करना तुम्हें उचित नहीं है।

किमुद्यममिमं व्यर्थं कृत्वा ते राक्षसाधिप।
दृष्टाश्चेत्त्वं रणे तेन तदन्तं तव जीवितम्॥ १०॥

हे राक्षसराज! तुम यह व्यर्थ का उद्योग क्यों करना चाहते हो? यदि तुम संग्राम में श्रीराम के सामने पड़ गये तो फिर जीते नहीं बच सकोगे।

जीवितं च सुखं चैव राज्यं चैव सुदुर्लभम्।
यदीच्छसि चिरं भोक्तुं मा कृथा रामविप्रियम्॥ ११॥

हे रावण! यदि तुम जीवन, सुख और दुर्लभ राज्य को चिरकाल तक भोगना चाहते हो तो राम से विरोध मत करो।

परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत्।
भव स्वदारनिरतः स्वकुलं रक्ष राक्षस॥ १२॥

हे रावण! संसार में परस्त्री-गमन से बढ़कर और कोई पातक नहीं है, अतः आप अपनी स्त्रियों से ही प्रीति करें और अपने कुल की रक्षा करें।



❮ पञ्चविंशः सर्गः ❯ (२५)

रावण का मारीच को धमकाना और उसका सहायता देने के लिए तैयार होना—

मारीचेन तु तद्वाक्यं क्षमं युक्तं निशाचरः।
उक्तो न प्रतिजग्राह मर्तुकाम इवौषधम्॥ १॥

मारीच के युक्तियुक्त और शिक्षाप्रद वचनों को रावण ने उसी प्रकार ग्रहण नहीं किया जैसे मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ व्यक्ति ओषधि को ग्रहण नहीं करता।

तं पथ्यहितवक्तारं मारीचं राक्षसाधिपः।
अब्रवीत्परुषं वाक्यमयुक्तं कालचोदितः॥ २॥

उस समय काल से प्रेरित सन्निहित मृत्युवाला रावण युक्तियुक्त एवं हितकारी वचन कहनेवाले मारीच से कठोर और अनुचित वचन बोला—

यत्किलैतदयुक्तार्थं मारीच मयि कथ्यते।
वाक्यं निष्फलमत्यर्थमुप्तं बीजमिवोषरे॥ ३॥

हे मारीच! तूने मेरी इच्छा के विरुद्ध जो कुछ मुझसे कहा है वह ऊसर भूमि में बीज बोने के समान मेरे लिए सर्वथा निष्फल है।

त्वद्वाक्यैर्न तु मां शक्यं भेत्तुं रामस्य संयुगे।
पापशीलस्य मूर्खस्य मानुषस्य विशेषतः॥ ४॥

पापाचारी, मूर्ख और विशेष कर मनुष्य राम से संग्राम करने के लिए मुझे तुम इन बातों से रोक नहीं सकते।

अवश्यं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः।
प्राणैः प्रियतरा सीता हर्तव्या तव सन्निधौ॥ ५॥

हे मारीच! युद्ध में खर का वध करनेवाले राम की उस प्राणप्रिय सीता का मैं तेरे ही सामने अवश्य हरण करूँगा।

एवं मे निश्चिता बुद्धिर्हृदि मारीच वर्तते।
न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः॥ ६॥

हे मारीच! यह मेरा बुद्धिपूर्वक निश्चित हृदय का विचार है। मेरे इस विचार को सुर-असुर और यहाँ तक कि इन्द्र भी परिवर्तित नहीं कर सकता।

दोषं गुणं वा सम्पृष्टस्त्वमेवं वक्तुमर्हसि।
अपायं वाऽप्युपायं वा कार्यस्यास्य विनिश्चये॥ ७॥

यदि मैं तुमसे सीताहरण के विषय में उपाय-अपाय, गुण-दोष आदि के विषय में पूछता तो तुम्हें इस प्रकार की बातें कहनी चाहिए थीं।

गुणदोषौ न पृच्छामि क्षमं चात्मनि राक्षस।
अस्मिंस्तु त्वं महाकृत्ये साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥ ८॥

हे राक्षस! मैंने तुझसे गुण-दोष तथा हानि-लाभ की बात नहीं पूछी। मेरा तो यह कहना है कि सीताहरणरूपी इस महाकार्य में तुम मेरी सहायता करो।

न चेत्करोषि मारीच हन्मि त्वाममद्य वै।
एतत्कार्यमवश्यं मे बलादपि करिष्यसि॥ ९॥

हे मारीच! यदि तुम मेरा यह काम नहीं करोगे तो मैं आज ही तुम्हारा काम तमाम कर दूँगा। तुम्हें मेरा यह कार्य अपनी इच्छा के विरुद्ध भी करना ही होगा।

आज्ञप्तोऽराजवद्वाक्यं प्रतिकूलं निशाचरः।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं मारीचो राक्षसाधिपम्॥ १०॥

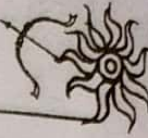
रावण ने जब राजाज्ञा के समान यह प्रतिकूल आज्ञा दी तब मारीच ने निर्भय हो उससे ये कठोर वचन कहे—

केनायमुपदिष्टस्ते विनाशः पापकर्मणा।
सपुत्रस्य सराष्ट्रस्य सामात्यस्य निशाचर॥ ११॥

हे राक्षस! किस पापी ने तुम्हें यह उपदेश दिया है, जिससे तुम अपने पुत्र, राज्य और मन्त्रिमण्डल सहित सर्वनाश को प्राप्त हो?

कस्त्वया सुखिना राजन्नाभिनन्दति पापकृत्।
केनेदमुपदिष्टं ते मृत्युद्वारमुपायतः॥ १२॥

हे राजन्! वह कौन पापी पुरुष हैं जो तुम्हें इस



प्रकार सुखी देखकर प्रसन्न नहीं होता? किसने नीतिपूर्वक तुम्हें यह मृत्यु का द्वारा बताया है?

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः॥ १३॥

हे रावण! जिन राक्षसों का राजा तुम्हारे जैसा क्रूर-स्वभाव, निर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय हो, वे राक्षस अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे।

तदिदं काकतालीयं घोरमासादितं मया।
अत्रैव शोचनीयस्त्वं ससैन्यो विनशिष्यसि॥ १४॥

इस घोर कार्य में हाथ डालने से मैं तो बे-मौत मारा जाऊँगा, मुझे इसका शोक नहीं, मुझे शोक तो इस बात का है कि तुम सेनासहित मारे जाओगे।

मां निहत्य नु रामश्च न चिरात्त्वां वधिष्यति।
अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये यदरिणा हतः॥ १५॥

मुझे मारकर राम अवलिम्ब ही तुम्हें भी मार डालेगा, इसीलिए मैं शत्रु राम के द्वारा मारे जाने पर अपने को कृतकृत्य[१] समझता हूँ।

दर्शनादेव रामस्य हतं मामुपधारय।
आत्मानं च हतं विद्धि हत्वा सीतां सबान्धवम्॥ १६॥

राम के सामने जाते ही मैं मारा जाऊँगा यह निश्चित है। सीताहरण से तुम भी बन्धु-बान्धवोंसहित अपने आपको मरा ही समझो।

आनयिष्यसि चेत्सीतामाश्रमात्सहितो मया।
नैव त्वमसि नाहं च नैव लङ्का न राक्षसाः॥ १७॥

मान लो, यदि तुम मेरे साथ रामाश्रम से सीता को हर भी लाये तो भी मैं, तुम, सारी लङ्का और ये राक्षस सभी नष्ट हो जायेंगे।

एवमुक्त्वा तु परुषं मारीचो रावणं ततः।
गच्छावेत्यब्रवीद्दीनो भयाद्रात्रिंचरप्रभोः॥ १८॥

रावण से इस प्रकार के कठोर वचन कहकर मारीच राक्षसराज रावण के भय से दीन हुआ बोला—अच्छा, हम लोग चलें।

प्रहृष्टस्त्वभवतेन वचनेन स रावणः।
परिष्वज्य सुसंश्लिष्टमिदं वचनमब्रवीत्॥ १९॥

मारीच के ऐसा कहने पर रावण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसका गाढालिंगन कर उससे यह वचन बोला—

एतच्छौण्डीर्ययुक्तं ते मच्छन्दादिव भाषितम्।
इदानीमसि मारीचः पूर्वमन्यो निशाचरः॥ २०॥

हे मारीच! अब तुमने मेरे मन के अनुरूप वीरतापूर्ण बात कही है। अब तुम वस्तुतः मारीच बन गये हो। इससे पूर्व तो मैं तुम्हें एक साधारण राक्षस समझता था।

आरुह्यतामयं शीघ्रं खगो रत्नविभूषितः।
मया सह तथा युक्तः पिशाचवदनैः खरैः॥ २१॥

अब तुम भयंकर मुखवाले खरों से युक्त, रत्नविभूषित आकाशगामी रथ पर मेरे साथ शीघ्र सवार हो लो।

ततो रावणमारीचौ विमानमिव तं रथम्।
आरुह्य ययतुः शीघ्रं तस्मादाश्रममण्डलात्॥ २२॥

तदनन्तर मारीच और रावण विमान के समान उस रथ पर सवार होकर उस आश्रम से शीघ्र ही चल पड़े।

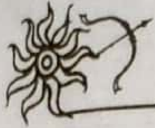
तथैव तत्र पश्यन्तौ पत्तनानि वनानि च।
गिरींश्च सरितः सर्वा राष्ट्राणि नगराणि च॥ २३॥

जाते हुए उन दोनों ने मार्ग में अनेक ग्रामों, पर्वतों, नदियों, राष्ट्रों और नगरों[२] को देखा।

---

१. हनुमन्नाटक में इस स्थिति का चित्रण यूँ किया है—
रामादपि च मर्तव्यं मर्तव्यं रावणादपि।
उभयोर्यदि मर्तव्यं रामो न रावणः॥
—हनुमन्नाटक ३। १५
राम से भी मरना है और रावण से भी। जब दोनों के हाथों ही मरना है तब राम के द्वारा मरना ही उत्तम है, रावण के द्वारा नहीं (राम के हाथ से मरकर इस लोक में यश मिलेगा और स्वामी रावण का कार्य भी सम्पन्न होगा।)

२. कुछ पाश्चात्य लेखकों की मिथ्या धारणा है कि प्राचीन



समेत्य दण्डकारण्यं राघवस्याश्रमं ततः।
ददर्श सहमारीचो रावणो राक्षसाधिपः॥ २४॥

दण्डक वन में पहुँच कर राक्षसराज रावण और मारीच ने श्रीराम के आश्रम को देखा।

अवतीर्य रथात्तस्मात्ततः काञ्चनभूषणात्।
हस्ते गृहीत्वा मारीचं रावणो वाक्यमब्रवीत्॥ २५॥

उस स्वर्णविभूषित रथ से नीचे उतर रावण ने मारीच का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—

एतद्रामाश्रमपदं दृश्यते कदलीवृतम्।
क्रियतां तत्सखे शीघ्रं यदर्थं वयमागताः॥ २६॥

केले के वृक्षों से घिरा हुआ यही राम का आश्रम है। हे मित्र! जिस कार्य के लिए हम यहाँ आये हैं उसे तुम अब शीघ्र कर डालो।

स रावणवचः श्रुत्वा मारीचो राक्षसस्तदा।
मृगो भूत्वाऽऽश्रमद्वारि रामस्य विचचार ह॥ २७॥

रावण की यह बात सुनकर राक्षस मारीच अद्‌भुत मृग का रूप धारण कर रामाश्रम के द्वार पर घूमने लगा।

तस्मिन्नेव ततः काले वैदेही शुभलोचना।
कुसुमान्यपचिन्वन्ती चचार रुचिरानना॥ २८॥
अनर्हाऽरण्यवासस्य सा तं हेममयं मृगम्।
मुक्तामणिविचित्राङ्गं ददर्श परमाङ्गना॥ २९॥

उस समय सुन्दर नेत्रोंवाली, सुन्दर मुखवाली और वनवास के अयोग्य सीता ने पुष्प तोड़ने के लिए इधर-उधर घूमते हुए मणि और मुक्ताओं से चित्रित उस स्वर्णमृग को देखा।

स च तां रामदयितां पश्यन् मायामयो मृगः।
विचचार पुनश्चित्रं दीपयन्निव तद्वनम्॥ ३०॥

वह बनावटी हिरण भी श्रीराम की प्राणप्यारी सीता को देखते हुए उस वन को अपनी कमनीय कान्ति से सुशोभित करते हुए वहाँ विचरने लगा।

अदृष्टपूर्वं तं दृष्ट्वा नानारत्नमयं मृगम्।
विस्मयं परमं सीता जगाम जनकमात्मजा॥ ३१॥

नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित, अदृष्ट-पूर्व उस मृग को देख जनकदुलारी सीता परम विस्मित हुई।

➤ षड्विंशः सर्गः ➤ (२६)

मृग को पकड़ने के लिए सीता का आग्रह—

सा तं सम्प्रेक्ष्य सुश्रोणी कुसुमान्यपचिन्वती।
भर्तारमभि चक्रन्द लक्ष्मणं चापि सायुधम्॥ १॥

पुष्पों को चुनती हुई सर्वाङ्ग सुन्दरी सीता ने उस मृग को देखकर राम और लक्ष्मण को आयुधों सहित आने के लिए उच्चस्वर से पुकारा।

तयाऽऽहूतौ नरव्याघ्रौ वैदेह्या रामलक्ष्मणौ।
वीक्षमाणौ तु तं देशं ददृशतुर्मृगम्॥ २॥

सीता द्वारा बुलाये जाने पर नरकेसरी राम और लक्ष्मण दोनों भाई उस स्थान पर पहुँचे जहाँ सीता थी। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने भी उस मायामृग को देखा।

शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो राममब्रवीत्।
तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम्॥ ३॥

उस मृग को देखते ही लक्ष्मण के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ और उन्होंने श्रीराम से कहा—मुझे ऐसा

काल में दक्षिण भारत में नगर आदि नहीं थे, किन्तु रावण की लङ्का से पञ्चवटी की यात्रा का विवरण पढ़ने से यह सिद्ध होता है कि रामायण-काल में दक्षिण भारत में अनेक समृद्ध नगर थे।



प्रतीत होता है कि मृग के रूप में यह राक्षस मारीच है।

मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव।
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः॥ ४॥

हे पृथिवीनाथ! रघुकुलभूषण राम! रत्नों से विभूषित इस प्रकार का विचित्र मृग संसार में कभी देखा नहीं गया, अतः निःसन्देह यह सब माया है, बनावट है।

एवं ब्रुवाणं काकुत्स्थं प्रतिवार्य शुचिस्मिता।
उवाच सीता संहृष्टा छद्मना हृतचेतना॥ ५॥

छद्म-वेषधारी मायामृग को देखने से हतबुद्धि हुई सीता लक्ष्मण को बोलने से रोककर परम प्रसन्न हो एवं मुस्करा कर श्रीराम से बोली—

आर्यपुत्राभिरामोऽसौ मृगो हरति मे मनः।
आनयैनं महाबाहो क्रीडार्थं नो भविष्यति॥ ६॥

हे आर्यपुत्र! यह परम मनोहर मृग मेरे मन को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। हे महाबाहो! आप इसे पकड़ लाओ। यह हम लोगों के लिए मन बहलाव का साधन सिद्ध होगा।

न चास्य सदृशो राजन् दृष्टपूर्वो मृगः पुरा।
तेजसा क्षमया दीप्त्या यथाऽयं मृगसत्तमः॥ ७॥

हे राजन्! इस मृग के समान तेजस्वी, सौम्य और कान्तिमान् मृग मैंने पहले कभी भी नहीं देखा।

नानावर्णविचित्राङ्गो रत्नबिन्दुसमाचितः।
द्योतयन्वनमव्यग्रं शोभते शशिसन्निभः॥ ८॥

इसका रंग-बिरंगा, बीच-बीच में रत्न की बिन्दुओं से युक्त शरीर कैसा शोभा दे रहा है! यह मृग चन्द्रमा के समान सम्पूर्ण वनभूमि को शान्तभाव से प्रकाशित कर रहा है।

अहो रूपमहो लक्ष्मीः स्वरसम्पच्च शोभना।
मृगोऽद्भुतो विचित्राङ्गो हृदयं हरतीव मे॥ ९॥

अहो! इसका रूप कैसा अनुपम है, इसकी कान्ति कितनी प्रिय है और इसकी स्वरलहरी कितनी मनोहर है। हे राम! विचित्र अङ्गोंवाला यह हिरण मेरे मन को हर रहा है।

यदि ग्रहणमभ्येति जीवन्नेव मृगस्तव।
आश्चर्यभूतं भवति विस्मयं जनयिष्यति॥ १०॥

यदि यह मृग जीवित पकड़ लिया जाए तो यह एक आश्चर्यप्रद पदार्थ आश्रम में रहकर विस्मय उत्पन्न किया करेगा।

समाप्तवनवासानां राज्यस्थानां च नः पुनः।
अन्तःपुरविभूषार्थो मृग एष भविष्यति॥ ११॥

हम लोगों का वनवास समाप्त हो जाने पर जब हम लोग राजसिंहासन पर आरूढ़ हो जायेंगे तब यह मृग हमारे अन्तःपुर (रनिवास) की शोभा बढ़ायेगा।

निहतस्यास्य सत्त्वस्य जाम्बूनदमयत्वचि।
शष्पबृस्यां विनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम्॥ १२॥

यदि यह मृग मारा ही गया तो इसकी स्वर्णमयी मृगछाला को चटाई के ऊपर बिछाकर मैं उस पर बैठना पसन्द करूँगी।

एवं सीतावचः श्रुत्वा तं दृष्ट्वा मृगमद्भुतम्।
लोभितस्तेन रूपेण सीतया च प्रचोदितः॥ १३॥
उवाच राघवो हृष्टो भ्रातरं लक्ष्मणं वचः।
इह त्वं भव सन्नद्धो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम्॥ १४॥

सीता के ऐसे वचनों को सुनकर और उस अद्भुत मृग को देखकर श्रीराम का मन भी उस पर मुग्ध हो गया। सीता द्वारा प्रेरित करने पर राम ने अपने भाई लक्ष्मण से कहा—तुम अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होकर और सावधान रहकर सीता की रक्षा करो।



◀ सप्तविंशः सर्गः ▶ (२७)

मृग को पकड़ने के लिए राम का प्रस्थान और सीता की लक्ष्मण को फटकार—

तथा तु तं समादिश्य भ्रातरं रघुनन्दनः।
बबन्धासिं महातेजा जाम्बूनदमयत्सरुम्॥ १॥

महातेजस्वी राम ने भाई लक्ष्मण को इस प्रकार आदेश देकर सोने की मूठवाली तलवार बाँधी।

ततस्त्र्यवनतं चापमादायात्मविभूषणम्।
आबध्य च कलापौ द्वौ जगामोदग्रविक्रमः॥ २॥

तत्पश्चात् तीन स्थानों से झुके हुए धनुष को जो क्षत्रियों का आभूषण है, ले और पीठ पर दो तरकश बाँध कर प्रचण्ड पराक्रमी राम ने आश्रम से प्रस्थान किया।

तं वञ्चयानो राजेन्द्रमापतन्तं निरीक्ष्य वै।
बभूवान्तर्हितस्त्रासात्पुनः सन्दर्शनेऽभवत्॥ ३॥

श्रीराम को अपनी ओर आते देखकर धोखे-बाज मारीच भयभीत होकर कुछ देर के लिए छिप गया, थोड़ी देर पश्चात् फिर सामने आ गया।

अवेक्ष्यावेक्ष्य धावन्तं धनुष्पाणिं महावने।
अतिवृत्तमिषोः पाताल्लोभयानं कदाचन॥ ४॥

उस महावन में धनुष-पाणि राम को अपने पीछे दौड़ लगाते हुए देखकर वह मृग कभी तो कुलाचें मारकर दूर निकल जाता और कभी अति समीप आकर उनको लुभाता।

दर्शनादर्शनादेवं सोऽपाकर्षत राघवम्।
सुदूरमाश्रमस्यास्य मारीचो मृगतां गतः॥ ५॥

इस प्रकार कभी छिपता और कभी दृष्टिपथ में आता हुआ वह मृगरूपधारी मारीच श्रीराम को उनके आश्रम से बहुत दूर ले गया।

आसीत्क्रुद्धस्तु काकुत्स्थो विवशस्तेन मोहितः।
ततो रामो महातेजास्तं हन्तुं कृतनिश्चयः॥ ६॥

जब उस मृग के सौन्दर्य पर मोहित होकर श्रीराम इस प्रकार छले गये तब वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और महातेजस्वी राम ने उस मृग को मार डालने का निश्चय किया।

भूयस्तु शरमुद्धृत्य कुपितस्तत्र राघवः।
सूर्यरश्मिप्रतीकाशं ज्वलन्तमरिमर्दनः॥ ७॥

फिर तो उन्होंने रोष में भरकर बड़े वेग से अपने तरकश से सूर्य की भाँति देदीप्यमान् शत्रु-विदारक एक बाण निकाला।

सन्धाय सुदृढे चापे विकृष्य बलवद्बली।
मुमोच ज्वलितं दीप्तमस्त्रं ब्रह्मविनिर्मितम्॥ ८॥

उस बाण को अपने दृढ़ धनुष पर चढ़ा और धनुष की प्रत्यञ्चा को बलपूर्वक खींचकर महाबली राम ने ब्रह्मा के बनाये हुए उस देदीप्यमान अस्त्र को मृग को लक्ष्य करके छोड़ दिया।

विनदन् भैरवं नादं धरण्यामल्पजीवितः।
म्रियमाणस्तु मारीचो जहौ तां कृत्रिमां तनुम्॥ ९॥

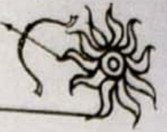
उस बाण के आघात से, थोड़ी देर जीनेवाले मारीच ने पृथिवी पर गिरकर भयंकर नाद किया। मरते समय उसने मृग के बनावटी शरीर को भी त्याग दिया।

स्मृत्वा तद्वचनं रक्षो दध्यौ केन तु लक्ष्मणम्।
इह प्रस्थापयेत्सीता शून्ये तां रावणो हरेत्॥ १०॥

उस समय रावण के आदेश का स्मरण करता हुआ वह विचारने लगा कि क्या उपाय किया जाए जिससे सीता लक्ष्मण को यहाँ भेजे और रावण एकान्त पाकर सीता का अपहरण कर ले।

स प्राप्तकालमाज्ञाय चकार च ततः स्वरम्।
सदृशं राघवस्यैव हा सीते लक्ष्मणेति च॥ ११॥

उपयुक्त अवसर जानकर, मारीच ने श्रीराम के कण्ठस्वर का अनुकरण करते हुए 'हा लक्ष्मण! हा सीते!'—इस प्रकार आर्त्तनाद किया।



तत्र रामं भयं तीव्रं श्रुत्वाविवेश तत्स्वरम्।
त्वरमाणो जनस्थानं ससाराभिमुखस्तदा॥ १२॥

उस समय मृगरूपी मारीच के उस आर्तनाद को सुनकर श्रीराम के हृदय में भय उत्पन्न हो गया, अतः उन्होंने शीघ्रतापूर्वक जनस्थान की ओर प्रस्थान किया।

आर्तस्वरं तु तं भर्तुर्विज्ञाय सदृशं वने।
उवाच लक्ष्मणं सीता गच्छ जानीहि राघवम्॥ १३॥

उधर जब सीताजी ने वन में अपने पति के कण्ठस्वर के सदृश उस आर्तनाद को सुना तब उसने लक्ष्मण से कहा—तनिक जाकर राम का पता तो लगाओ।

आक्रन्दमानं तु वने भ्रातरं त्रातुमर्हसि।
रक्षसां वशमापन्नं सिंहानामिव गोवृषम्॥ १४॥

सिंह के वश में आनेवाली गाय अथवा बैल के सदृश राक्षसों के वश में पड़कर आर्तनाद करनेवाले अपने भाई की तुम अवश्य रक्षा करो।

न जगाम तथोक्तस्तु भ्रातुराज्ञाय शासनम्।
तमुवाच ततस्तत्र कुपिता जनकात्मजा॥ १५॥

जब सीताजी के ऐसा कहने पर भी, अपने भाई के अनुशासन में रहनेवाले लक्ष्मण आश्रम से नहीं गये तब सीताजी ने क्रुद्ध होकर लक्ष्मणजी से कहा—

सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातुस्त्वमसि शत्रुवत्।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपत्स्यसे॥ १६॥

हे लक्ष्मण! तुम अपने भाई के मित्ररूप में शत्रु ही हो, क्योंकि इस विषम परिस्थिति में भी तुम अपने भाई की रक्षा के लिए नहीं जा रहे हो।

लोभान्मम कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम्।
व्यसनं ते प्रियं मन्ये स्नेही भ्रातरि नास्ति ते॥ १७॥

तुम मुझे हथियाने के लोभ से ही श्रीराम की रक्षा के लिए नहीं जा रहे हो। राम की विपत्ति ही तुम्हें प्रिय लगती है। वस्तुतः भाई के प्रति तुम्हारा स्नेह नहीं है।

इति ब्रुवाणं वैदेहीं बाष्पशोकपरिप्लुताम्।
अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तां सीतां मृगवधूमिव॥ १८॥

जब शोकाविष्ट सीता ने आँखों में आँसू भरकर ऐसा कहा, तब मृगी के समान डरी हुई सीता से लक्ष्मणजी ने कहा—

पन्नगासुरगन्धर्वदेवमानुषराक्षसैः।
अशक्यस्तव वैदेहि भर्ता जेतुं न संशयः॥ १९॥

हे वैदेहि! पन्नग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव और राक्षस—इनमें से कोई भी श्रीराम को जीत नहीं सकता।

त्रिभिर्लोकैः समुद्युक्तैः सेश्वरैरपि सामरैः।
हृदयं निर्वृतं तेऽस्तु सन्तापस्त्यज्यतामयम्॥ २०॥

यदि तीनों लोक और समस्त देवताओंसहित इन्द्र मिलकर श्रीराम के समक्ष आ जायें तो भी वे राम पर विजय नहीं पा सकते, अतः तुम अपने हृदय को स्वस्थ बनाओ और सन्ताप को त्याग दो।

आगमिष्यति ते भर्ता शीघ्रं हत्वा मृगोत्तमम्।
न च तस्य स्वरो व्यक्तं मायया केनचित्कृतः॥ २१॥

उस मृग को मारकर तुम्हारे पति शीघ्र ही लौटेंगे। जो आर्तनाद तुमने सुना है वह निश्चय ही तुम्हारे पति का नहीं है। यह किसी मायावी का है।

न्यासभूतासि वैदेहि न्यस्ता मयि महात्मना।
रामेण त्वं वरारोहे न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे॥ २२॥

हे सीते! महात्मा श्रीराम तुम्हें धरोहर के रूप में मुझे सौंप गये हैं, अतः हे शोभने! मैं तुम्हें यहाँ अकेली नहीं छोड़ सकता।

लक्ष्मणेनैवमुक्ता सा क्रुद्धा संरक्तलोचना।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं लक्ष्मणं सत्यवादिनम्॥ २३॥

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सीताजी के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वह सत्यवादी लक्ष्मण के प्रति कठोर शब्दों में बोली—

अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुलपांसन।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्॥ २४॥

हे अनार्य, कठोर-हृदय, क्रूर-स्वभाव और कुल-कलंक! मैं जान गई कि श्रीराम का विषादग्रस्त होना तुझे भला लगता है।



सुदुष्टस्त्वं वने राममेकमेकोऽनुगच्छसि।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा॥ २५॥

लक्ष्मण! तेरा स्वभाव बहुत खोटा है, इसी से तू अकेला मुझे प्राप्त करने के लिए श्रीराम के साथ वन में आया है अथवा भरत की प्रेरणा से अपने भावों को छिपाकर तुम राम के पीछे घूम रहे हो।

तन्न सिध्यति सौमित्रे तव वा भरतस्य वा।
समक्षं तव नृशंसे प्राणांस्त्यक्ष्ये न संशयः॥ २६॥

परन्तु नृशंस लक्ष्मण! स्मरण रखो तुम्हारी अथवा भरत की यह साध पूर्ण नहीं होगी। मैं तुम्हारे सामने ही अपने प्राण दे दूँगी।

गोदावरीं प्रवेक्ष्यामि विना रामेण लक्ष्मण।
आबन्धिष्येऽथवा त्यक्ष्ये विषमे देहमात्मनः॥ २७॥

हे लक्ष्मण! श्रीराम के बिना मैं गोदावरी में डूब मरूँगी अथवा गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी अथवा किसी ऊँचे स्थान से गिरकर प्राण त्याग दूँगी।

पिबाम्यहं विषं तीक्ष्णं प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
न त्वहं राघवादन्यं कदापि पुरुषं स्पृशे॥ २८॥

मैं हलाहल विषपान कर लूँगी अथवा अग्नि में कूदकर भस्म हो जाऊँगी, परन्तु श्रीराम को छोड़ पर-पुरुष का कभी स्पर्श भी नहीं करूँगी।

रामं विना क्षणमपि न हि जीवामि भूतले।
इत्युक्तः परुषं वाक्यं सीतया रोमहर्षणम्॥ २९॥
अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिर्विजितेन्द्रयः।
उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम॥ ३०॥

श्रीराम के बिना इस भूतल पर मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। जब सीताजी ने ऐसी रोमाञ्चकारी और कठोर बातें कहीं तब जितेन्द्रिय लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा—आप मेरी पूज्या हैं, इसलिए मैं आपकी बातों का उत्तर नहीं दे सकता।

न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे।
श्रोत्रयोरुभ्योर्मेऽद्य तप्तनाराचसन्निभम्॥ ३१॥

हे जनककुमारि वैदेहि! मैं ऐसे वाक्य सहन नहीं कर सकता जो तपाये हुए बाणों के समान मेरे दोनों कानों को विद्ध कर रहे हैं।

गमिष्ये यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने।
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः॥ ३२॥

हे शुभानने! मेरी जाने की इच्छा नहीं है, परन्तु तुम्हारे दुराग्रह के कारण मैं अब राम के पास जाता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। हे विशालाक्षि! इस वन के समस्त देवता तुम्हारी रक्षा करें।

निमित्तानि हि घोराणि यानि प्रादुर्भवन्ति मे।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः॥ ३३॥

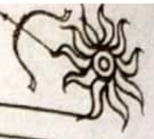
इस समय इस वन में भयानक अपशकुन हो रहे हैं। भाई राम के साथ वापस लौटकर मैं पुनः आपका दर्शन करूँ यही मेरी शुभकामना है।

ततस्तु सीतामभिवाद्य लक्ष्मणः
कृताञ्जलिः किञ्चिदभिप्रणम्य च।
अन्वीक्षमानो बहुशश्च मैथिलीं
जगाम रामस्य समीपमात्मवान्॥ ३४॥

तदनन्तर जितेन्द्रिय लक्ष्मण ने हाथ जोड़ और कुछ झुककर सीता को प्रणाम किया, फिर बार-बार पीछे मुड़कर सीता को देखते हुए वे राम के पास चले।[१]

---

१. लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि लक्ष्मणजी जब आश्रम से जाने लगे तब उन्होंने सीता की रक्षा के लिए एक रेखा खींच दी कि तुम इससे बाहर मत निकलना और यदि कोई व्यक्ति इसके अन्दर आने का प्रयत्न करेगा तो वह जल कर भस्म हो जायेगा। महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण से इस मिथ्या धारणा का समर्थन नहीं होता और-तो-और तुलसी दासजी ने भी ऐसा वर्णन नहीं किया है, अतः यह धारणा सर्वथा असत्य एवं कपोलकल्पित है।



◀ अष्टविंशः सर्गः ▶ (२८)

रावण का आगमन—

तदासाद्य दशग्रीवः क्षिप्रमन्तरमास्थितः।
अभिचक्राम वैदेहीं परिव्राजकरूपधृत्॥ १॥

लक्ष्मण के जाते ही समीप ही छिपा हुआ रावण संन्यासी का रूप धारण कर सीताजी के सामने जा पहुँचा।

स मन्मथशराविष्टो ब्रह्मघोषमुदीरयन्।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपः॥ २॥

काम के बाणों से विद्ध राक्षसराज रावण वेदमन्त्रों का उच्चारण करता हुआ एकान्त आश्रम में सीता से विनयपूर्वक बोला—

कासि कस्य कुतश्चित्त्वं किं निमित्तं च दण्डकान्।
एका चरसि कल्याणि घोरान् राक्षससेवितान्॥ ३॥

हे कल्याणि! तू कौन है? किसकी स्त्री है? कहाँ से आई है और तेरे इस दण्डकवन में आने का कारण क्या है? राक्षसों से सेवित इस भयंकर वन में तू अकेली क्यों विचर रही है?

द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम्।
सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामासाब्रवीत्सा॥ ४॥

संन्यासी वेशधारी रावण को आया देख सीता उसका यथाविधि आतिथ्य करके बोली—

दुहिता जनकस्याहं मैथिलस्य महात्मनः।
सीता नाम्नास्मि भद्रं ते रामभार्या द्विजोत्तम॥ ५॥

हे द्विजोत्तम! आपका कल्याण हो। मैं मिथिला के महाराज महात्मा जनक की पुत्री हूँ। मेरा नाम सीता है और मैं श्रीराम की प्रिया भार्या हूँ।

मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥ ६॥

जब हमारा विवाह हुआ उस समय मेरे पति श्रीराम की अवस्था पच्चीस वर्ष की थी और मेरी अवस्था अट्ठारह वर्ष की थी।

उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने।
भुञ्जाना मानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी॥ ७॥

विवाह के पश्चात् बारह वर्ष तक मैंने इक्ष्वाकुवंशी राजभवन में रहकर मनुष्य-सुलभ सम्पूर्ण भोगों को भोगते हुए अपने सभी मनोरथों को पूर्ण किया।

ततस्त्रयोदशे वर्षे राजाऽमन्त्रयत प्रभुः।
अभिषेचयितुं रामं समेतो राजमन्त्रिभिः॥ ८॥

तत्पश्चात् तेरहवें वर्ष के आरम्भ में सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल से विचार-विमर्श कर महाराज दशरथ ने श्रीराम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने का निश्चय किया।

तस्मिन्सम्भ्रियमाणे तु राघवस्याभिषेचने।
कैकेयी नाम भर्तारमार्या सा याचते वरम्॥ ९॥

जिस समय श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं उस समय मेरी कनिष्ठ सास कैकेयी ने वर माँगा।

मम प्रव्राजनं भर्तुर्भरतस्याभिषेचनम्।
द्वावयाचत भर्तारं सत्यसन्धं नृपोत्तमम्॥ १०॥

कैकेयी ने सत्यप्रतिज्ञ अपने पति महाराज दशरथ से मेरे पति के लिए वनवास और भरत के लिए राज्याभिषेक ये—दो वर माँगे।

नाद्य भोक्ष्ये न च स्वप्स्ये न च पास्ये कथञ्चन।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते॥ ११॥

उसने यह भी कहा कि मैं न तो खाऊँगी, न पीऊँगी और न सोऊँगी। इतना ही नहीं यदि राम का राज्याभिषेक हो गया तो मैं अपने प्राण दे दूँगी।

इति ब्रुवाणां कैकेयीं श्वशुरो मे स मानदः।
अयाचतार्थैरन्वर्थैर्न च याञ्चां चकार सा॥ १२॥

कैकेयी के ऐसा कहने पर मेरे श्वसुर महाराज दशरथ ने कैकेयी से विविध प्रकार के अन्य पदार्थ माँगने के लिए कहा, परन्तु कैकेयी ने अपने पति की

प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया।

सत्यसन्धो महातेजाः पिता दशरथः स्वयम्।
कैकेय्याः प्रियकामार्थं तं रामं नाभ्यषेचयत्॥ १३॥

सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथ ने कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए, पूर्व घोषित श्रीराम का राज्याभिषेक नहीं किया।

अभिषेकाय तु पितुः समीपं राममागतम्।
कैकेयी मम भर्तारमित्युवाच धृतं वचः॥ १४॥

जब श्रीराम अपने राज्याभिषेक के लिए महाराज दशरथ के समीप आये तब कैकेयी ने दृढ़तापूर्वक मेरे पति से यह वचन कहा—

तव पित्रा समाज्ञप्तं ममेदं शृणु राघव।
भरताय प्रदातव्यमिदं राज्यमकण्टकम्॥ १५॥
त्व या हि खलु वस्तव्यं नव वर्षाणि पञ्च च।
वने प्रव्रज काकुत्स्थ पितरं मोचयानृतात्॥ १६॥

हे राम! तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें जो आदेश दिया है वह मुझसे सुनो! महाराज की आज्ञा है कि यह निष्कण्टक राज्य भरत को दिया जाए और तुम चौदह वर्ष तक वन में वास करो, अतः तुम वन में जाओ और अपने पिता को मिथ्यावादी होने से बचाओ।

तथेत्युक्त्वा च तां रामः कैकेयीमकुतोभयः।
चकार तद्वचस्तस्या मम भर्ता दृढव्रतः॥ १७॥

तब वीतभय, दृढ़ व्रतधारी मेरे पति श्रीराम ने—'ऐसा ही होगा'—यह कहकर कैकेयी की बात को स्वीकार कर लिया।

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
एतद्ब्राह्मण रामस्य ध्रुवं व्रतमनुत्तमम्॥ १८॥

हे ब्राह्मण! मेरे पति श्रीराम दान देते हैं लेते नहीं, वे सत्य बोलते हैं असत्य नहीं। श्रीराम का यह अटल एवं सर्वोत्तम व्रत है।

तस्य भ्राता तु वैमात्रो लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्।
रामस्य पुरुषव्याघ्रः सहायः समरेऽरिहा॥ १९॥

श्रीराम के लक्ष्मण नामक महापराक्रमी सौतेले भाई हैं। वह नरकेसरी मेरे पति के सहायक और संग्राम में शत्रु का नाश करनेवाले हैं।

ते वयं प्रच्युता राज्यात्कैकेय्यास्तु कृते त्रयः।
विचराम द्विजश्रेष्ठ वनं गम्भीरमोजसा॥ २०॥

कैकेयी के कारण हम तीनों राज्य से भ्रष्ट होकर वनवासी बनाये गये। हे द्विजश्रेष्ठ! इस वन में हम लोग अपने ओज और पराक्रम से विचरण करते हैं।

समाश्वस मुहूर्तं तु शक्यं वस्तुमिह त्वया।
आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्॥ २१॥

यदि आप विश्राम करना चाहें तो थोड़ी देर यहाँ ठहरें। मेरे पतिदेव वन में होनेवाले कन्द-मूल आदि लेकर आते ही होंगे।

स त्वं नाम च गोत्रं च कुलं चाचक्ष्व तत्त्वतः।
एकश्च दण्डकारण्ये किमर्थं चरसि द्विज॥ २२॥

हे ब्राह्मण! अब आप अपने नाम, कुल और गोत्र का भी ठीक-ठीक परिचय दीजिए और यह भी बतलाइए कि आप अकेले इस दण्डक वन में क्यों घूम रहे हैं?

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां रामपत्न्यां महाबलः।
प्रत्युवाचोत्तरं तीव्रं रावणो राक्षसाधिपः॥ २३॥

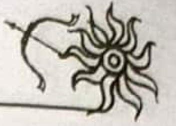
श्रीराम की पत्नी सीताजी ने जब इस प्रकार पूछा तब महाबली राक्षसराज रावण ने कठोर शब्दों में यह उत्तर दिया—

येन वित्रासिता लोकाः सदेवासुरपन्नगाः।
अहं स रावणो नाम सीते रक्षोगणेश्वरः॥ २४॥

हे सीते! जिसने देव, असुर और पन्नगों सहित तीनों लोकों को आतङ्कित कर रखा है, मैं वही राक्षसों का राजा रावण हूँ।

त्वां तु काञ्चनवर्णाभां दृष्ट्वा कौशेयवासिनीम्।
रतिं स्वकेषु दारेषु नाधिगच्छाम्यनिन्दिते॥ २५॥

हे अनिन्दिते! तेरे स्वर्ण के समान गौरवर्ण और रेशमी वस्त्रों को देखकर मुझे अपनी पत्नियों के प्रति प्रीति नहीं रही।



बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ।
सर्वासामेव भद्रं ते ममाग्रमहिषी भव॥ २६॥

हे सीते! तुम्हारा कल्याण हो। मैंने इधर-उधर से बहुत-सी उत्तम-उत्तम स्त्रियों का अपहरण कर अपने यहाँ ला रखी हैं। तुम उन सबकी पटरानी बनो।

लङ्का नाम समुद्रस्य मध्ये मम महापुरी।
सागरेण परिक्षिप्ता निविष्टा गिरिमूर्धनि॥ २७॥

चारों ओर समुद्र से घिरी हुई समुद्र के मध्य पर्वत की चोटी पर लङ्का नाम की मेरी महापुरी है।

तत्र सीते मया सार्धं वनेषु विहरिष्यसि।
न चास्यारण्यवासस्य स्पृहयिष्यसि भामिनि॥ २८॥

हे सीते! जब तू वहाँ वनों में मेरे साथ विहार करेगी तब हे भामिनि! तू इस वन में रहना भी पसन्द नहीं करेगी।

पञ्च दास्यः सहस्राणि सर्वाभरणभूषिताः।
सीते परिचरिष्यन्ति भार्या भवसि मे यदि॥ २९॥

हे सीते! यदि तू मेरी भार्या बनना स्वीकार करेगी तो सम्पूर्ण आभूषणों से समलंकृत पाँच सहस्र दासियाँ तेरी परिचर्या करेंगी।

रावणेनैवमुक्ता तु कुपिता जनकात्मजा।
प्रत्युवाचानवद्याङ्गी तमनादृत्य राक्षसम्॥ ३०॥

रावण के इस प्रकार के वचन कहने पर सुन्दर अंगोंवाली सीता क्रुद्ध होकर उस राक्षस का तिरस्कार करते हुए बोली—

महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम्।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता॥ ३१॥

मैं महान् पर्वत के समान अचल एवं अटल, समुद्र के समान क्षोभरहित, इन्द्र के समान अपने पति की अनुगामिनी हूँ।

सर्वलक्षणसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम्।
सत्यसन्धं महाभागमहं राममनुव्रता॥ ३२॥

मैं सम्पूर्ण शुभ-लक्षणों से युक्त, वटवृक्ष के समान अपने आश्रितों की रक्षा करनेवाले, सत्यव्रती एवं महाभाग श्रीराम की अनुगामिनी हूँ।

त्वं पुनर्जम्बूकः सिंहीं मामिच्छसि सुदुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा॥ ३३॥

तू गीदड़ के समान होकर मुझ दुर्लभ सिंहनी को प्राप्त करना चाहता है, किन्तु तू मुझे उसी प्रकार नहीं छू सकता जिस प्रकार सूर्य की प्रभा को कोई छू नहीं सकता।

पादपान् काञ्चनान्नूनं बहून्पश्यसि मन्दभाक्।
राघवस्य प्रियां भार्यां यस्त्वमिच्छसि रावण॥ ३४॥

अरे अभागे रावण! जो तू श्रीराम की प्रिया भार्या की इच्छा कर रहा है तब निश्चय ही तू स्वप्न में बहुत-से सोने के वृक्षों[1] को देख रहा है।

क्षुधितस्य हि सिंहस्य मृगशत्रोस्तरस्विनः।
आशीविषस्य वदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि॥ ३५॥

मुझे प्राप्त करने की इच्छा करके तू हिरण के शत्रु महाबलशाली सिंह के अथवा विषधर सर्प के दाँतों को उखाड़ना चाहता है।

मन्दरं पर्वतं श्रेष्ठं पाणिना हर्तुमिच्छसि।
कालकूटं विषं पीत्वा स्वस्तिमान् गन्तुमिच्छसि॥ ३६॥

मुझे प्राप्त करने की इच्छा करके तू पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल को अपनी भुजाओं से उठाना चाहता है अथवा हलाहल विषपान कर तू सुखपूर्वक चला जाना चाहता है।

अक्षि सूच्या प्रमृजसि जिह्वया लेक्षि च क्षुरम्।
राघवस्य प्रियां भार्यां योऽधिगन्तुं त्वमिच्छसि॥ ३७॥

श्रीराम की प्राणप्रिय भार्या को पाने की इच्छा कर तू सूई की नोक से अपनी आँखों को खुजलाना चाहता है अथवा तेज छुरे की धार को जिह्वा से चाटना चाहता है।

---

१. संसार में सोने के वृक्ष नहीं होते, तू उन्हें पाने के समान ही मुझे पाना चाहता है।

अथवा—ऐसी किंवदन्ती है कि जिन मनुष्यों को जागृतावस्था में अथवा स्वप्नावस्था में सोने के वृक्ष दिखाई देते हैं वे शीघ्र मरनेवाले होते हैं।

अवसज्य शिलां कण्ठे समुद्रं तर्तुमिच्छसि।
सूर्याचन्द्रमसौ चोभौ पाणिभ्यां हर्तुमिच्छसि॥ ३८॥

अथवा मेरी इच्छा करके तुम गले में पत्थर बाँधकर समुद्र को पार करना चाहते हो और सूर्य तथा चन्द्रमा को अपने हाथ से पकड़ना चाहते हो।

कल्याणवृत्तां रामस्य यो भार्यां हर्तुमिच्छसि।
अयोमुखानां शूलानामग्रे चरितुमिच्छसि॥ ३९॥

जो पवित्र आचरणवाले राम की प्राणप्रिया भार्या का अपहरण करना चाहता है वह मानो लोहे के नुकीले काँटों पर चलना चाहता है।

यदन्तरं सिंहशृगालयोर्वने
यदन्तरं स्यन्दिनिकासमुद्रयोः।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं
तदन्तरं वै तव राघवस्य च॥ ४०॥

जो अन्तर सिंह और सियार में है, जो अन्तर एक क्षुद्र नदी और विशाल सागर में है, जो अन्तर अमृत और काँजी में है, वही अन्तर तुममें और श्रीराम में हैं।

यदन्तरं वायसवैनतेययोः
यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि।
यदन्तरं सारसगृध्रयोर्वने
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥ ४१॥

जो अन्तर गरुड़ और कौवे में है, जो अन्तर जलकाक और मोर में है और जो अन्तर वन में वसनेवाले सारस और गिद्ध में है, वही अन्तर दाशरथि श्रीराम और तुममें है।

तस्मिन् सहस्राक्षसमप्रभावे
रामे स्थिते कार्मुकबाणपाणौ
हृतापि तेऽहं न जरां गमिष्ये
वज्रं यथा मक्षिकयाऽवगीर्णम्॥ ४२॥

इन्द्र के समान अमित प्रभावशाली और हाथ में धनुष-बाण धारण करनेवाले श्रीराम के रहते हुए यदि तू मुझे हर कर ले भी गया तो तू उसी प्रकार नहीं बच सकेगा जैसे मक्खी निगले हुए घी को पचा नहीं सकती।

◀ एकोनत्रिंशः सर्गः ▶ (२९)

सीता का अपहरण—

एवं ब्रुवन्त्यां सीतायां संरब्धः परुषं वचः।
ललाटे भ्रुकुटीं कृत्वा रावणः प्रत्युवाच ह॥ १॥

सीता के ऐसे कठोर वचन कहने पर रावण भी क्रुद्ध हो, भौंहें टेढ़ी कर यह कठोर वचन बोला—

भ्राता वैश्रवणस्याहं दशग्रीवः प्रतापवान्।
भयाद्भीता विद्रवन्ति यस्य देवाः सगन्धर्वाः॥ २॥

हे सुन्दरी! मैं कुबेर का भाई महाप्रतापी रावण हूँ। जिसके भय से देव और गन्धर्व भी भाग खड़े होते हैं।

मम सञ्जातरोषस्य मुखं दृष्ट्वैव मैथिलि।
विद्रवन्ति परित्रस्ताः सुराः शक्रपुरोगमाः॥ ३॥

हे मैथिलि! क्रोधाविष्ट मेरे मुख को देखकर इन्द्र आदि देव भी त्रस्त होकर दिशाओं में भाग जाते हैं।

मम पारे समुद्रस्य लङ्का नाम पुरी शुभा।
सम्पूर्णा राक्षसैर्घोरैर्यथेन्द्रस्यामरावती॥ ४॥

समुद्र के पार मेरी लङ्का नाम की परम शोभायमान नगरी है। वह नगरी भयंकर राक्षसों से वैसे ही परिपूर्ण है जैसे देवताओं से इन्द्रपुरी अमरावती।

तत्र त्वं वस हे सीते राजपुत्रि मया सह।
न स्मरिष्यसि नारीणां मानुषीणां मनस्विनि॥ ५॥

हे राजकुमारी सीते! तुम वहाँ चलकर मेरे साथ निवास करो। हे मनस्विनी! वहाँ रहने पर तुम्हें सामान्य स्त्रियों के भोगादि का स्मरण भी नहीं होगा।

भुञ्जाना मानुषान्भोगान्दिव्यांश्च वरवर्णिनि।
न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः॥ ६॥



हे शोभन वर्णवाली सीते! वहाँ मनुष्योचित भोग और दिव्य पदार्थों को उपभोग करते हुए तुम्हें अल्पायु और साधारण मनुष्य राम की स्मृति भी नहीं आयेगी।

तेन किं भ्रष्टराज्येन रामेण गतचेतसा।
करिष्यसि विशालाक्षि तापसेन तपस्विना॥ ७॥

हे विशालाक्षि सीते! तू राज्य से च्युत, मन्द-बुद्धि, क्लेश सहनेवाले तपस्वी राम के पास रहकर क्या करेगी?

सर्वराक्षसभर्तारं कामात्स्वयमिहागतम्।
न मन्मथशराविष्टं प्रत्याख्यातुं त्वमर्हसि॥ ८॥

मैं राक्षसों का राजा होकर भी स्वेच्छा से यहाँ आया हूँ। काम के बाणों से पीड़ित मेरा त्याग करना तुम्हें उचित नहीं है।

प्रत्याख्याय हि मां भीरु परितापं गमिष्यसि।
चरणेनाभिहत्येव पुरूरवसमुर्वशी॥ ९॥

हे भीरु! मेरा तिरस्कार करके तुम्हें वैसे ही पछताना पड़ेगा जैसे उर्वशी राजा पुरूरवा को लात मारकर पछताई थी।

अङ्गुल्या न समो रामो मम युद्धे स मानुषः।
तव भाग्येन सम्प्राप्तं भजस्व वरवर्णिनि॥ १०॥

संग्राम में वह साधारण मनुष्य राम मेरी एक अँगुली के समान भी नहीं है। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारे भाग्य से ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ, अतः तू मुझे अङ्गीकार कर।

एवमुक्ता तु वैदेही क्रुद्धा संरक्तलोचना।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रहिते राक्षसाधिपम्॥ ११॥

जब रावण ने सीता से इस प्रकार कहा तब सीता भी कुपित हो और लाल-लाल आँखें कर उस निर्जन वन में रावण से यह कठोर वचन बोली—

कथं वैश्रवणं देवं सर्वभूतनमस्कृतम्।
भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि॥ १२॥

हे रावण! सम्पूर्ण देवताओं के पूज्य कुबेर को अपना भाई बताकर भी तुम ऐसा निन्दनीय कर्म करने पर क्यों उतारू हुए हो?

अवश्यं विनशिष्यन्ति सर्वे रावण राक्षसाः।
येषां त्वं कर्कशो राजा दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः॥ १३॥

हे रावण! स्मरण रख, वे सम्पूर्ण राक्षस मारे जायेंगे जिनका राजा तेरे जैसा क्रूर, दुष्टबुद्धि और अजितेन्द्रिय है।

अपहृत्य शचीं भार्यां शक्यमिन्द्रस्य जीवितुम्।
न च रामस्य भार्यां मामपनीयास्ति जीवितम्॥ १४॥

इन्द्र की धर्मपत्नी शची का अपहरण करके भले ही कोई जीवित रह जाए, परन्तु श्रीराम की धर्मपत्नी मेरा अपहरण करके कोई व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता।

सीताया वचनं श्रुत्वा हस्ते हस्तं समाहत्य।
अभिगम्य सुदुष्टात्मा राक्षसः काममोहितः॥ १५॥
जग्राह रावणः सीतां बुधः खे रोहिणीमिव।
वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः॥ १६॥

सीता के ये वचन सुनकर, हाथ-पर-हाथ मारकर उस कामान्ध एवं महादुष्ट रावण ने सीता के निकट जा सीता को उसी प्रकार पकड़ लिया जैसे आकाश में रोहिणी नामक नक्षत्र पर बुध आक्रमण करता है। रावण ने बायें हाथ से सीता के बालों को पकड़ लिया।

ततस्तां परुषैर्वाक्यैर्भर्त्सयन् स महास्वनः।
अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोपयत्तदा॥ १७॥

फिर उसने ऊँचे स्वर से और कठोर वाक्यों से सीता को धमका कर, उसे अपनी गोद में भरकर रथ पर बैठा दिया।

स ग्रहीता विचुक्रोश रावणेन यशस्विनी।
रामेति सीता दुःखार्ता रामं दूरगतं वने॥ १८॥

उस समय रावण द्वारा पकड़ी गई यशस्विनी सीता अत्यन्त दुःखी हो वन में दूर गये हुए अपने पति को 'हे राम! हे राम!' ऐसा कहकर जोर-जोर से पुकारने लगी।

तामकामां स कामार्तः पन्नगेन्द्रवधूमिव।
विचेष्टमानामादाय उत्पपाताथ रावणः॥ १९॥



उस समय काम से पीड़ित वह रावण सर्पिणी के समान छटपटाती हुई कामनारहित सीता को लेकर आकाश-मार्ग से चल पड़ा।

ततः सा राक्षसेन्द्रेण ह्रियमाणा विहायसा।
भृशं चुक्रोश मत्तेव भ्रान्तचित्ता यथाऽऽतुरा॥ २०॥

उस समय रावण के द्वारा अपहृत तथा आकाशमार्ग से ले जाई जाती हुई सीता आतुर तथा उन्माद रोग से पीड़ित भ्रान्त-चित्त व्यक्ति के सदृश बार-बार रोने और चिल्लाने लगी—

हा लक्ष्मण महाबाहो गुरुचित्तप्रसादक।
ह्रियमाणां न जानीषे रक्षसा कामरूपिणा॥ २१॥

हे महाबाहो, गुरुजनों के मन को प्रसन्न करने-वाले लक्ष्मण! कामचारी राक्षस मुझे उठाकर लिये जा रहा है, तुम्हें इस बात का पता नहीं है।

जीवितं सुखमर्थांश्च धर्महेतोः परित्यजन्।
ह्रियमाणामधर्मेण मां राघव न पश्यसि॥ २२॥

आश्रितों के रक्षारूपी धर्म के लिए जीवन, सुख और राज्य को भी त्यागनेवाले हे रघुकुलभूषण राम! अधर्मपूर्वक यह राक्षस मुझे उठाकर लिये जा रहा है। क्या आपको यह नहीं दीख पड़ता?

सा तदा करुणा वाचो विलपन्ति सुदुःखिता।
वनस्पतिगतं गृध्रं ददर्शायतलोचना॥ २३॥

इस प्रकार दुःख से करुणापूर्ण विलाप करती हुई विशालनेत्रा सीता ने वृक्षों के मध्य में बैठे हुए गृध्रकूट के निवासी महाराज जटायु को देखा।

सा तमुद्वीक्ष्य सुश्रोणी रावणस्य वशं गता।
समाक्रन्दद्भयपरा दुःखोपहतया गिरा॥ २४॥

रावण के वश में पड़ी हुई सीता ने जटायु को देखकर भयभीत एवं दुःखित हो रोकर कहा—

जाटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्।
अनेन राक्षसेन्द्रेणाकरुणं पापकर्मणा॥ २५॥

हे आर्य जटायु! देखो यह पापी रावण निर्दयता-पूर्वक अनाथों के समान मेरा हरण करके मुझे लिये जा रहा है।

नैष वारयितुं शक्यस्तव क्रूरो निशाचरः।
सत्त्ववाञ्जितकाशी च सायुधश्चैव दुर्मतिः॥ २६॥

कदाचित् तुम इस महाबली, बहुतों को जीतने-वाले, शस्त्रास्त्र-सम्पन्न, क्रूर और दुर्मति राक्षस को न रोक सको, परन्तु—

रामाय तु यथातत्त्वं जटायो हरणं मम।
लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः॥ २७॥

हे जटायु! तुम मेरे अपहरण का समस्त वृत्तान्त यथातथ्य श्रीराम एवं लक्ष्मण से निवेदन कर देना।

➤ त्रिंशः सर्गः ➤ (३०)

जटायु एवं रावण का युद्ध—

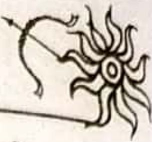
तं शब्दमवसुप्तस्तु जटायुरथ शुश्रुवे।
निरीक्ष्य रावणं क्षिप्रं वैदेहीं च ददर्श सः॥ १॥

औंघते हुए जटायु ने सीता के उस आर्तनाद को सुना। आँखें खोलने पर उसने शीघ्र ही रावण तथा सीता को देखा।

ततः पर्वतकूटाभस्तीक्ष्णतुण्डः[१] खगोत्तमः[२]।
वनस्पतिगतः श्रीमान् व्याजहार शुभां गिरम्॥ २॥

१. हम पीछे सप्रमाण यह सिद्ध कर आये हैं कि जटायु पक्षी नहीं था। यहाँ '**तीक्ष्णतुण्डः**' शब्द से कुछ शंका हो सकती है। कुछ टीकाकारों ने 'तीक्ष्णतुण्ड' का अर्थ पैनी चोंचवाला किया है, परन्तु यह अर्थ जटायु के लिए प्रयुक्त 'आर्य' विशेषण को देखकर उपयुक्त नहीं लगता। तुण्ड का अर्थ चोंच ही नहीं होता। तुण्ड का अर्थ मुख भी होता है। आद्य शंकराचार्य ने अपने 'मोहमुग्दर' अथवा 'चर्पट-मञ्जरी' नामक पुस्तिका में व्याकरण घोटनेवाले एक बूढ़े को उपदेश करते हुए कहा था—

दशनविहीनं जातं तुण्डम्।



तब वनस्पतियों के बीच में बैठे हुए पर्वतशृङ्ग के तुल्य बड़े डील-डौलवाले, रोबीले मुखवाले, आकाश-विहारियों में उत्तम, श्रीमान् जटायु ने मधुर शब्दों में कहा—

दशग्रीव स्थितो धर्मे पुराणे सत्यसंश्रयः।
भ्रातस्त्वं निन्दितं कर्म कर्तुं नार्हसि साम्प्रतम्॥ ३॥

हे भाई रावण! आप सत्यप्रतिज्ञ और सनातन धर्म में स्थित रहनेवाले हैं, अतः आपको ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिए।

राजा सर्वस्य लोकस्य रामो दशरथात्मजः।
धर्मपत्नी सीता तस्य यां त्वं हर्तुमिहेच्छसि॥ ४॥

जो सब लोकों के राजा हैं उन्हीं दशरथनन्दन श्रीराम की धर्मपत्नी यह सीता है जिसको तुम हरना चाहते हो।

कथं राजा स्थितो धर्मे परदारान्परामृशेत्।
रक्षणीया विशेषेण राजदारा महाबलः॥ ५॥

जो राजा धर्ममार्ग में स्थित है क्या उसे पर-स्त्री पर हाथ डालना उचित है? हे महाबली रावण! तुम्हें तो राजदाराओं की विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए।

निवर्तय मतिं नीचां परदाराभिमर्शनात्।
न तत्समाचरेद्धीरो यत्परोऽस्य विगर्हयेत्॥ ६॥

हे रावण! पर-वधू से सम्पर्क करने की इच्छा रखनेवाली नीच बुद्धि को तुम त्याग दो। जिस कार्य के करने से लोक में निन्दा होती है, धीर लोगों को वह काम रहीं करना चाहिए।

धर्ममर्थं च कामं च शिष्टाः शास्त्रेष्वनागतम्।
व्यवस्यन्ति न राजानो धर्मं पौलस्त्यनन्दन॥ ७॥

हे पौलस्त्यनन्दन! शिष्टजन जिस धर्म, अर्थ अथवा काम के सम्बन्ध में शास्त्र का विधान नहीं पाते तब राजा जैसा आचरण करता है लोग भी उसी का अनुसरण करते हैं। [अतः राजा को सदा धर्म-मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए।]

विषये वा पुरे वा ते यदा रामो महाबलः।
नापराध्यति धर्मात्मा कथं तस्यापराध्यसि॥ ८॥

जब महाबली राम ने तुम्हारे अधिकृत देश वा पुर में तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया तब तुम उनके प्रति यह अपराध क्यों कर रहे हो?

यदि शूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतः खरः।
अतिवृत्तो हतः पूर्वं रामेणाक्लिष्टकर्मणा॥ ९॥
अत्र ब्रूहि यथातत्त्वं को रामस्य व्यतिक्रमः।
यस्य त्वं लोकनाथस्य भार्यां हृत्वा गमिष्यसि॥ १०॥

अनाचारी खर ने यदि शूर्पनखा के कहने में आकर जनस्थान गत श्रीराम पर आक्रमण किया और धर्मात्मा राम ने उसका काम तमाम कर दिया तो अब तुम्हीं ठीक-ठीक बताओ कि इसमें श्रीराम का क्या दोष है, जो तुम उस लोकनाथ की भार्या का अपहरण करके ले जा रहे हो।

क्षिप्रं विसृज वैदेहीं मा त्वा घोरेण चक्षुषा।
दहेद्दहनभूतेन वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा॥ ११॥

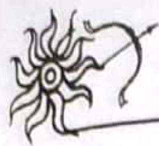
हे रावण! तुम सीता को तुरन्त छोड़ दो। ऐसा न हो कि जैसे इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्रासुर को भस्म किया था उसी प्रकार राम भी तुम्हें अपने अग्नितुल्य नेत्रों से भस्म कर डालें।

यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्त्तिर्न यशो भुवि।
शरीरस्य भवेत्खेदः कस्तत्कर्म समाचरेत्॥ १२॥

जिस कार्य के करने से न पुण्य होता है, न कीर्ति और स्थिर यश प्राप्त होता है, अपितु जिस कार्य के करने से केवल शारीरिक कष्ट ही होता है ऐसे कर्म

अर्थात् तेरा तुण्ड=मुख दाँतों से रहित हो गया है, फिर भी तू व्याकरण का घोटा लगा रहा है, इससे तेरी रक्षा नहीं होगी। यहाँ तुण्ड का अर्थ मुख के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता, अतः तीक्ष्णतुण्ड का हमारा अर्थ रोबीले मुखवाला ही ठीक है।

२. **खगोत्तमः**—खगोत्तम का अर्थ भी कुछ टीकाकारों ने पक्षिश्रेष्ठ किया है जो ठीक नहीं। 'ख' का अर्थ होता है आकाश और 'ग' का अर्थ होता है गमन करनेवाला, अतः अर्थ हुआ आकाश-विहारियों में श्रेष्ठ। यहाँ भी हमारा किया अर्थ ही साधु है।



में कौन भाग्यहीन व्यक्ति प्रवृत्त होगा?

वृद्धोऽहं त्वं युवा धन्वी सशरः कवची रथी।
तथाऽप्यादाय वैदेहीं कुशली न गमिष्यसि॥ १३॥

यद्यपि मैं बूढ़ा हूँ और तुम युवा, रथ पर सवार, कवच धारण किए हुए एवं धनुष-बाण लिए हुए हो तथापि तुम सीताजी को लेकर यहाँ से कुशलपूर्वक नहीं जा सकते।

न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः।
युध्यस्व यदि शूरोऽसि मुहूर्तं तिष्ठ रावण॥ १४॥

मेरी आँखों के सामने तुम बलात् सीता का अपहरण नहीं कर सकते। हे रावण! यदि तुम वीर हो तो थोड़ी देर ठहरो और मेरे साथ युद्ध करो।

युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर।
वृन्तादिव फलं त्वां तू पातयेयं रथोत्तमात्॥ १५॥

हे निशाचर! तुम्हारा आतिथ्य करूँगा और जैसे पका फल अपनी डाली से गिर पड़ता है इसी प्रकार तुम्हें इस उत्तम रथ से नीचे गिरा दूँगा।

इत्युक्तः क्रोधताम्राक्षः तप्तकाञ्चनकुण्डलः।
राक्षसेन्द्रोऽभिदुद्राव पतगेन्द्रममर्षणः॥ १६॥

जटायु के ऐसा कहने पर उसके वाक्यों को सहन न कर शुद्ध स्वर्ण के कुण्डल पहिने हुए रावण क्रोध के मारे लाल आँखें कर, वनवासी उस गृध्रराज जटायु पर झपटा।

ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च॥ १७॥

अतुलवीर्यवान् उन दोनों (राक्षसराज रावण और तपस्विश्रेष्ठ जटायु) का एक मुहूर्त तक घमासान का युद्ध हुआ।

तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः।
पक्षौ पार्श्वौ च पादौ च खड्गमुद्धृत्य सोऽच्छिनत्॥ १८॥

अन्त में श्रीराम के लिए युद्ध करनेवाले जटायु के दोनों कन्धों, हाथों और पैरों को रावण ने तलवार के वार से काट दिया।

स च्छिन्नवक्षः सहसा रक्षसा रौद्रकर्मणा।
निपपात हतो गृध्रो धरण्यामल्पजीवितः॥ १९॥

भयानक कर्म करनेवाले रावण द्वारा वक्षस्थल और पैरों के कट जाने पर जटायु मरणासन्न होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

सा तु ताराधिपमुखी रावणेन समीक्ष्य तम्।
गृध्रराजं विनिहतं विललाप सुदुःखिता॥ २०॥

रावण द्वारा मारे गये जटायु को देखकर चन्द्रानना सीताजी दुःखपूर्वक विलाप करने लगी।

ततस्तु राम रामेति रुदन्तीं लक्ष्मणेति च।
जगामादाय चाकाशं रावणी राक्षसेश्वरः॥ २१॥

तब जटायु के लिए विलाप करती हुई और हा राम! हा लक्ष्मण! कहकर रोती हुई सीता को लेकर राक्षसराज रावण आकाश-मार्ग से चला गया।

➤ एकत्रिंशः सर्गः ➤ (३१)

सीता की रावण को फटकार और रावण का उसे लेकर लङ्का पहुँचना—

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा।
दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी॥ १॥
रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम्।
रुदन्ती करुणं सीता ह्रियमाणेदमब्रवीत्॥ २॥

अपहरण की जाती हुई सीता जो दुःखित अत्यन्त उद्विग्न और भयभीत थी, जिसकी आँखें रोदन और क्रोध के कारण लाल हो गई थीं, वह आकाश-मार्ग से जाते हुए भयङ्कर नेत्रोंवाले राक्षसेश्वर रावण से आर्तस्वर में यह बोली—

न व्यपत्रपसे नीच कर्मणाऽनेन रावण।
ज्ञात्वा विरहितां यन्मां चोरयित्वा पलायसे॥ ३॥



अरे नीच रावण! क्या तुम्हें इस गर्हित काम को करते हुए तनिक भी लज्जा नहीं आती जो तू मुझे अकेली पाकर चोरी से उठाकर भागा जा रहा है।

धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वं कथितवांस्तदा।
कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम्॥ ४॥

मेरा अपहरण करने से पूर्व तूने अपनी जिस शूरवीरता और बल का बखान किया था तेरी उस शूरवीरता और बल को धिक्कार है। संसार में अपने कुल को कलङ्क लगानेवाले तेरे इस चरित्र को भी धिक्कार है।

किं कर्तुं शक्यमेवं हि यज्जवेनैव धावसि।
मुहूर्तमपि तिष्ठस्व न जीवन् प्रतियास्यसि॥ ५॥

ऐसी दशा में जब तू मुझे लेकर अत्यन्त वेग से भागा जा रहा है कोई क्या कर सकता है। हाँ, यदि तू एक मुहूर्त भी ठहर जाए तो तू जीवित नहीं जा सकेगा।

न हि चक्षुष्पथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः।
ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम्॥ ६॥

उन दोनों राजपुत्र राम-लक्ष्मण की दृष्टि में पड़ते ही तू अपनी सम्पूर्ण सेनासहित एक मुहूर्त भर भी जीवित नहीं बच सकेगा।

साधु कृत्वाऽऽत्मनः पथ्यं साधु मां मुञ्च रावण।
मत्प्रधर्षणरुष्टो हि भ्रात्रा सह पतिर्मम॥ ७॥
विधास्यति विनाशाय त्वं मां यदि न मुञ्चसि।
राक्षसा निहता येन सहस्राणि चतुर्दश॥ ८॥
स कथं राघवो वीरः सर्वास्त्रकुशलो बली।
न त्वां हन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम्॥ ९॥

हे रावण! तू अपने हित का भली प्रकार विचार कर मुझे प्रतिष्ठापूर्वक छोड़ दे अन्यथा मेरे हरणरूपी अपमान से क्रुद्ध मेरे पति अपने भाई लक्ष्मणसहित तुम्हारा समूल नाश कर डालेंगे। यदि तू मुझे नहीं छोड़ेगा तो जिस राम ने चौदह सहस्र राक्षसों को मार डाला था वे सम्पूर्ण अस्त्रों में कुशल, बलवान् एवं पराक्रमी रघुकुलभूषण राम अपनी प्रिया भार्या का अपहरण करनेवाले तुझे क्यों नहीं मारेंगे?

एतच्चान्यच्च परुषं वैदेही रावणाङ्कगा।
भयशोकसमाविष्टा करुणं विललाप ह॥ १०॥

रावण की गोद में पड़ी हुई सीता भय और शोक से पीड़ित हो इस प्रकार के तथा अन्य बहुत से कठोर वचन कह करुण स्वर में विलाप करने लगी।

ह्रियमाणा तु वैदेही कञ्चिन्नाथमपश्यति।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान् पञ्चवानरपुङ्गवान्॥ ११॥

रावण द्वारा इस प्रकार हरण की जाती हुई सीता ने आस-पास किसी रक्षक को देखते हुए कुछ दूर पर्वत-शिखर पर बैठे हुए पाँच वानरश्रेष्ठों को देखा।

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम्।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च॥ १२॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति मैथिली।
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम्॥ १३॥

उस विशाल-नेत्रा वरारोहा सीता ने सुवर्ण की भाँति चमचमाते हुए अपने रेशमी वस्त्र में अपने आभूषणों को बाँधकर उन वानरों के मध्य में डाल दिया। वस्त्र में लपेट कर डाले गये आभूषणों को उनके मध्य में डालकर सीता ने यह आशा की कि ये लोग इन आभूषणों के द्वारा मेरे अपहरण के समाचार को श्रीराम से निवेदन कर देंगे।

सम्भ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म न स बुद्धवान्।
स च पम्पामतिक्रम्य प्रविवेश लङ्कापुरीम्॥ १४॥

घबराहट के कारण रावण सीताजी के इस कर्म को न जान सका। वह पम्पा को लाँघकर लङ्कापुरी में प्रविष्ट हुआ।

सोऽभिगम्य पुरीं लङ्कां स्वमन्तःपुरमाविशत्।
तत्र निदधे रावणः सीतां शोकपरायणाम्॥ १५॥

लंकापुरी में जा रावण ने अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया और शोकाकुल सीताजी को भी वहीं रख दिया।



❮ द्वात्रिंशः सर्गः ❯ (३२)

सीता को लुभाने का प्रयत्न—

निष्क्रम्यान्तःपुरात्तस्मात्किं कृत्यमिति चिन्तयन्।
ददर्शाष्टौ महावीर्यान् राक्षसान् पिशिताशनान्॥ १ ॥

सीता को अन्तःपुर में रख, स्वयं वहाँ से निकल कर वह सोचने लगा अब आगे क्या करना चाहिए। सोचते-विचारते उसने महापराक्रमी आठ मांसाहारी राक्षसों को देखा।

स तान् दृष्ट्वा महावीर्यो वाक्यमुवाचैतानिदम्।
नानाप्रहरणाः क्षिप्रं जनस्थानं च गच्छत॥ २ ॥

उन महापराक्रमी राक्षसों को देखकर रावण ने उनसे कहा—हे राक्षस लोगो! तुम अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर शीघ्र जनस्थान को जाओ।

अप्रमादाच्च गन्तव्यं सर्वैरपि निशाचरैः।
कर्तव्यश्च सदा यत्नो राघवस्य वधं प्रति॥ ३ ॥

तुम सब लोग बड़ी सावधानी से वहाँ जाना और राम को मार डालने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना।

संदिश्य राक्षसान्घोरान् रावणोऽष्टौ महाबलान्।
आत्मानं बुद्धिवैक्लब्यात्कृतकृत्यममन्यत॥ ४ ॥

उन आठ महाबलशाली राक्षसों को जनस्थान में रहने का आदेश देकर रावण बुद्धि-दौर्बल्य के कारण अपने-आपको सफल-मनोरथ समझने लगा।

स चिन्तयानो वैदेहीं कामबाणप्रपीडितः।
प्रविवेश गृहं रम्यं सीतां द्रष्टुमभित्वरन्॥ ५ ॥

तत्पश्चात् कामबाणों से पीड़ित हो, सीता का स्मरण करते हुए, सीता को देखने के लिए उसने अपने रमणीक गृह में प्रवेश किया।

स प्रविश्य तु तद्वेश्म रावणो राक्षसाधिपः।
अपश्यद्राक्षसीमध्ये सीतां शोकपरायणाम्॥ ६ ॥

राक्षसराज रावण ने उस गृह में प्रविष्ट होकर शोक से पीड़ित सीता को राक्षसियों के मध्य में बैठे हुए देखा।

तां तु शोकपरां दीनामवशां राक्षसाधिपः।
स बलाद्दर्शयामास गृहं देवगृहोपमम्॥ ७ ॥

शोकपीड़ित, दीन एवं असहाय सीता को, उसकी इच्छा न होते हुए भी, राक्षसेश्वर रावण ने बलपूर्वक अपने देवतुल्य गृह को दिखलाया।

हर्म्यप्रासादसंबाधं स्त्रीसहस्रनिषेवितम्।
नानापक्षिगणैर्जुष्टं नानारत्नसमन्वितम्॥ ८ ॥

उस विशाल महल में छोटे-बड़े अनेक प्रकार के गृह बने हुए थे। सहस्रों स्त्रियाँ वहाँ वास करती थीं। नाना प्रकार के पक्षी वहाँ कलोलें कर रहे थे तथा यत्र-तत्र अनेक प्रकार के रत्न जड़े हुए थे।

दान्तैश्च तापनीयैश्चा स्फाटिकै राजतैरपि।
वज्रवैडूर्यचित्रैश्च स्तम्भैर्दृष्टिमनोहरैः॥ ९ ॥

उस भवन में हाथीदाँत, सुवर्ण, स्फटिकमणि और चाँदी के दर्शनीय तथा मनोहर खम्बे लगे हुए थे जिन पर हीरों और वैदूर्यमणि की नक्काशी का काम किया हुआ था।

दिव्यदुन्दुभिनिर्ह्रादं तप्तकाञ्चनतोरणम्।
दान्तिका राजताश्चैव गवाक्षाः प्रियदर्शना॥ १० ॥
हेमजालावृताश्चासंस्तत्र प्रासादपङ्क्तयः।
दशग्रीवः स्वभवने प्रादर्शयत मैथिलीम्॥ ११ ॥

वहाँ देव-दुन्दुभि के समान शब्द हो रहे थे। द्वारों पर सोने की बन्दनवारें लटक रही थीं। उस भवन में हाथीदाँत तथा चाँदी से निर्मित शोभायमान खिड़कियाँ लगी हुई थीं जिनकी जालियाँ सोने की थीं। वहाँ इस प्रकार के मकानों की पंक्तियाँ थीं। इस प्रकार के अपने भवन को रावण ने सीता को दिखलाया।

दीर्घिकाः पुष्पकरिण्यश्च नानावृक्षसमन्विताः।
रावणो दर्शयामास सीतां शोकपरायणाम्॥ १२ ॥

तत्पश्चात् रावण ने शोकग्रस्त सीता को उस भवन में निर्मित भाँति-भाँति के पुष्पों से शोभायमान छोटी और बड़ी अनेक पुष्करणियाँ दिखलाईं।



दर्शयित्वा तु वैदेह्याः कृत्स्नं तद्भवनोत्तमम्।
उवाच वाक्यं पापात्मा सीतां लोभितुमिच्छया॥ १३॥

अपने उन सम्पूर्ण उत्तम भवनों को सीता को दिखाकर उसे लुभाने के लिए वह पापात्मा रावण सीता से कहने लगा—

न देवेषु न यक्षेषु न गन्धर्वेषूरगेषु च।
अहं पश्यामि लोकेषु यो मे वीर्यसमो भवेत्॥ १४॥

देव, गन्धर्व, यक्ष और नागवर्ग में मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई देता जो मेरे समान बलवान् या पराक्रमी हो।

राज्यभ्रष्टेन दीनेन तापसेन गतायुषा।
किं करिष्यसि रामेण मानुषेणाल्पतेजसा॥ १५॥

राज्य से भ्रष्ट, दीन-दुःखी, भिक्षुक, गतायु और अल्प तेजवाले साधारण मनुष्य राम को लेकर तू क्या करेगी?

भजस्व सीते मामेव भर्ताहं सदृशस्तव।
यौवनं ह्यध्रुवं भीरु रमस्वेह मया सह॥ १६॥

हे सीता! तू मुझे ही स्वीकार कर, क्योंकि मैं ही तुम्हारे योग्य पति हूँ। यह यौवन अस्थिर है, अतः जब तक यह है तब तक तू मेरे साथ विहार कर।

दर्शने मा कृथा बुद्धिं राघवस्य वरानने।
काऽस्य शक्तिरिहागन्तुमपि सीते मनोरथैः॥ १७॥

हे शोभने! अब तू राम के दर्शन की आशा छोड़ दे। हे सीते! राम में तो कल्पना द्वारा भी यहाँ आने की शक्ति नहीं है।

न शक्यो वायुराकाशे पाशैर्बद्धुं महाजवः।
दीप्यमानस्य चाप्यग्नेर्ग्रहीतुं विमलां शिखाम्॥ १८॥

जिस प्रकार आकाश में प्रचण्ड वेग से गमन करनेवाले वायु को रस्सों से बाँधना और देदीप्यमान अग्नि की प्रज्ज्वलित शिखा को थामना असम्भव है उसी प्रकार राम का यहाँ आना भी असम्भव है।

लङ्कायां सुमहद्राज्यमिदं त्वमनुपालय।
त्वत्प्रेष्या मद्विधाश्चैव देवाश्चापि चराचरः॥ १९॥

अतः अब तुम लङ्का के इस विशाल राज्य का पालन करो। तुम्हारे ऐसा करने पर मेरे जैसे पराक्रमी राक्षस और देवता ही नहीं, अपितु समस्त संसार तुम्हारा आज्ञाकारी दास बनकर रहेगा।

इह माल्यानि सर्वाणि दिव्यगन्धानि मैथिलि।
भूषणानि च मुख्यानि सेवस्व च मया सह॥ २०॥

हे मैथिलि! लङ्का में जो दिव्य-मालाएँ, चन्दनादि सुगन्धित पदार्थ और जो उत्तम-उत्तम आभूषण हैं उन सबको तू मेरे साथ विहार करते हुए भोग।

पुष्पकं नाम सुश्रोणि यद्विमानमनुत्तमम्।
तत्र सीते मया सार्धं विहरस्व यथा सुखम्॥ २१॥

हे उत्तमाङ्गी! मेरे पास पुष्पक नामक जो उत्तम विमान है उसमें मेरे साथ बैठकर तू सुखपूर्वक विहार कर।

एवं वदति तस्मिन्सा वस्त्रान्तेन वराङ्गना।
पिधायेन्दुनिभं सीता मुखमश्रूण्यवर्तयत्[१]॥ २२॥

रावण के ऐसा कहने पर वराङ्गना सीता वस्त्र के छोर से चन्द्रमा के समान अपने मुख को ढाँप कर रोने लगी।

ध्यायन्तीं तामिवास्वस्थां दीनां चिन्ताहतप्रभाम्।
उवाच वचनं पापो रावणो राक्षसेश्वरः॥ २३॥

तब चिन्ता के कारण कान्ति-विहीन, दीन, अस्वस्थ एवं ध्यानमग्न सीता से पापी राक्षसराज रावण कहने लगा—

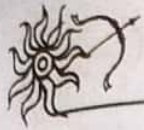
अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन च।
आर्षोऽयं दैवनिष्यन्दो यस्त्वामभिगमिष्यति॥ २४॥

हे वैदेहि! धर्मलोप हो जाने की शंका से तेरा लज्जित होना व्यर्थ है। हे देवि! तुम्हारे प्रति मेरा जो स्नेह सम्बन्ध होनेवाला है वह ऋषि-उपदिष्ट, शास्त्र-सम्मत राक्षस-विवाह[२] है।

---

१. इस श्लोक से रामायण-काल में पर्दा-प्रथा का खण्डन हो जाता है।

२. महर्षि मनु ने निम्न आठ विवाह गिनाये हैं—



प्रसादं कुरु मे क्षिप्रं वश्यो दासोऽहमस्मि ते।
इमाः शून्या मया वाचः शुष्यमानेन भाषिता॥ २५॥

अब तू मेरे ऊपर शीघ्र प्रसन्न हो जा। मैं तेरा वशवर्ती दास हूँ। देख, काम से पीड़ित होने के कारण ही ऐसा दीनता और हीनता की बातें मैंने तेरे सामने कही हैं। (अन्यथा रावण किसी स्त्री के समक्ष आज तक गिड़गिड़ाया नहीं।)

एवमुक्त्वा दशग्रीवो मैथिलीं जनकात्मजाम्।
कृतान्तवशमापन्नो ममेयमिति मन्यते॥ २६॥

जनकनन्दिनी सीता से इस प्रकार की बातें कहकर मृत्यु के मुख में पड़े रावण ने समझा कि अब सीता मेरे अधीन हो गई।

◀ त्रयत्रिंशः सर्गः ▶ (३३)

सीता की रावण को प्रताड़ना और रावण का एक वर्ष की अवधि निर्धारित करना—

सा तथोक्ता तु वैदेहि निर्भया शोककर्शिता।
तृणमन्तरतः कृत्वा रावणं प्रत्यभाषत॥ १॥

रावण के ऐसा कहने पर शोक से पीड़ित सीता ने अपने और रावण के मध्य में तृण रखकर एवं निभर्य होकर उससे कहा—

यदा विनाशो भूतानां दृश्यते कालचोदितः।
तदा कार्ये प्रमाद्यन्ति नराः कालवशं गताः॥ २॥

काल से प्रेरित जब प्राणियों का नाश निकट आ जाता है तब वे काल के वश में होकर शुभ कार्यों में प्रमाद करने लगते हैं।

मां प्रधृष्य स ते कालः प्राप्तोऽयं राक्षसाधम।
आत्मनो राक्षसानां च वधायान्तःपुरस्य च॥ ३॥

हे राक्षसाधम! मेरा अपमान करने के कारण तेरी मृत्यु निकट आ पहुँची है। अब तेरा, राक्षसों का और तेरी स्त्रियों के वध का समय आ गया है।

न शक्या यज्ञमध्यस्था वेदिः स्त्रुग्भाण्डमण्डिता।
द्विजातिमन्त्रपूता च चाण्डालेनाभिमर्शितुम्॥ ४॥
तथाऽहं धर्मनित्यस्य धर्मपत्नी पतिव्रता।
त्वया स्प्रष्टुं न शक्याऽस्मि राक्षसाधम पापिना॥ ५॥

जिस प्रकार स्त्रुवा तथा अन्य यज्ञपात्रों से भूषित और ब्राह्मणों के वेदपाठ से पवित्र यज्ञवेदी को चाण्डाल स्पर्श नहीं कर सकता उसी प्रकार हे राक्षसाधम रावण! तू धर्मशील राम की धर्मपत्नी मेरा स्पर्श नहीं कर सकता।

क्रीडन्ती राजहंसेन पद्मषण्डेषु नित्यशः।
हंसी सा तृणषण्डस्थं कथं पश्येत मद्गुकम्॥ ६॥

जो राजहंसी कमल कानन में सदा राजहंसों के साथ क्रीड़ा करती है वह तृणों के मध्य में बैठे हुए जलकाक से कैसे प्रास कर सकती है!

इदं शरीरं निःसंज्ञं बन्ध वा खादयस्व वा।
नेदं शरीरं रक्ष्यं मे जीवितं वापि राक्षस॥ ७॥

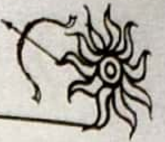
हे राक्षस! मेरे इस निश्चेष्ट शरीर को बाँधो या खा डालो, मैं इस शरीर तथा जीवन की रक्षा नहीं करना चाहती।

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं रोमहर्षणम्।
प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः॥ ८॥

सीता के रोमाञ्चकारी एवं कठोर वचनों को सुनकर रावण ने सीता को आतङ्कित करनेवाले ये वचन कहे—

ब्राह्मो दैवस्तथार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचाष्टमोऽधमः॥
—मनु० ३।२१

ब्राह्म, देव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच—ये आठ प्रकार के विवाह हैं।



शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान् द्वादश भामिनि।
कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि॥
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः॥ ९॥

हे चारुहासिनि सीते! सुन, यदि बारह मास के भीतर तू मुझे स्वीकार नहीं करेगी तो मेरे रसोइए मेरे प्रात:कालीन भोजन के लिए तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणः शत्रुरावणः।
राक्षसीश्च ततः क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत्॥ १०॥

सीता से ऐसे कठोर वचन कहकर शत्रुओं को रुलानेवाला रावण पास ही उपस्थित राक्षसियों से क्रोधपूर्वक यह वचन बोला—

शीघ्रमेव हि राक्षस्यो विकृता घोरदर्शनाः।
दर्पमस्या विनेष्यध्वं मांसशोणितभोजनाः॥ ११॥

रक्त और माँस का भक्षण करनेवाली विकट एवं भयंकर रूपवाली राक्षसियो! तुम सब शीघ्र ही इस सीता के गर्व को दूर करो।

वचनादेव तास्तस्य सुघोरा राक्षसीगणाः।
कृतप्राञ्जलयो भूत्वा मैथिलीं पर्यवारयन्॥ १२॥

रावण की बात सुनकर भयंकर रूपवाली उन राक्षसियों ने हाथ जोड़ और "जो आज्ञा"—कहकर सीताजी को चारों ओर से घेर लिया।

स ताः प्रोवाच राजा तु रावणो घोरदर्शनाः।
अशोकवनिकामध्ये मैथिली नीयतामियम्॥ १३॥

जाते-जाते रावण उन भयंकर राक्षसियों से बोला—इस सीता को तुम अशोक-वाटिका में ले जाओ।

तत्रैनां तर्जनैर्घोरैः पुनः सान्त्वैश्च मैथिलीम्।
आनयध्वं वशं सर्वा वन्यां गजवधूमिव॥ १४॥

वहाँ इसे डरा-धमकाकर और सान्त्वना आदि उपायों से इसी प्रकार वश में ले आओ जैसे वन के हाथी को वश में लाया जाता है।

इति प्रति समादिष्टा राक्षस्यो रावणेन ताः।
अशोकवनिकां जग्मुर्मैथिलीं प्रतिगृह्य तु॥ १५॥

जब रावण ने उन राक्षसियों को ऐसा आदेश दिया तब वे सीताजी को साथ ले अशोक-वाटिका में चली गईं।

◀ चतुस्त्रिंशः सर्गः ▶ (३४)

राम का आश्रम की ओर लौटना—

राक्षसं मृगरूपेण चरन्तं कामरूपिणम्।
निहत्य रामो मारीचं तूर्णं पथि निवर्तत॥ १॥

मृग के रूप में दौड़ते हुए कामरूपी राक्षस मारीच को मारकर श्रीराम शीघ्र ही आश्रम की ओर लौटे।

मारीचेन तु विज्ञाय स्वरमालम्ब्य मामकम्।
हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति यद्वाक्यं व्याजहार च॥ २॥
तं सौमित्रिः स्वरं श्रुत्वा तां च हित्वा च मैथिलीम्।
तयैव प्रहितः क्षिप्रं मत्सकाशमिहैष्यति॥ ३॥

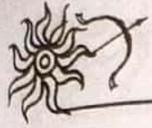
मार्ग में चलते-चलते उन्होंने सोचा कि मृगरूपधारी मारीच ने मेरे कण्ठ स्वर का अनुकरण कर—"हा लक्ष्मण! मैं मारा गया—" इस प्रकार का जो शब्द किया है इस पुकार को सुनकर लक्ष्मण सीता को अकेली छोड़कर अथवा सीता के भेजे जाने पर शीघ्र ही मेरे पास आयेगा।

राक्षसैः सहितैर्नूनं सीताया ईप्सितो वधः।
आजगाम जनस्थानमित्येवं चिन्तयन् रामः॥ ४॥

'प्रतीत होता है कि राक्षस लोग मिलकर सीता का वध करना चाहते हैं।' ऐसा सोचते हुए श्रीराम जनस्थान में पहुँचे।

ततो लक्ष्मणमायान्तं ददर्श विगतप्रभम्।
ततोऽविदूरे रामेण समीयाय स लक्ष्मणः॥ ५॥

आश्रम की ओर लौटते हुए श्रीराम ने मार्ग में उदास लक्ष्मण को अपनी ओर आते हुए देखा। जब



लक्ष्मण निकट आ गये तब—

गृहीत्वा च करं सव्यं लक्ष्मणं रघुनन्दनः।
उवाच मधुरोदर्कमिदं परुषमार्तवत्॥ ६॥

श्रीराम ने लक्ष्मण का बायाँ हाथ पकड़कर उससे परिणाम में मधुर तथा ऊपर से कठोर वचन कहे—

अहो लक्ष्मण गर्ह्यं ते कृतं यस्त्वं विहाय ताम्।
सीतामिहागतः सौम्य कच्चित्स्वस्ति भवेदिह॥ ७॥

हे लक्ष्मण! तुमने यह बहुत बुरा काम किया जो तुम सीता को अकेली छोड़कर यहाँ चले आये हो। हे सौम्य! सीता को छोड़कर जो तुम यहाँ चले आये इससे क्या सीता का कल्याण होगा?

न मेऽस्ति संशयो वीर सर्वथा जनकात्मजा।
विनष्टा भक्षिता वापि राक्षसैर्वनचारिभिः॥ ८॥

हे वीर! मुझे तो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि सीता को या तो वनचारी राक्षसों ने मार दिया है या उसे खा डाला है।

एवमुक्तस्तु सौमित्रिर्लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
भूयो दुःखसमाविष्टो दुःखितं राममब्रवीत्॥ ९॥

श्रीराम के इन वचनों को सुनकर शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मणजी अत्यन्त दुःखी होकर अपने दुःखी भ्राता राम से बोले—

न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः॥ १०॥

मैं अपनी इच्छा से सीताजी को छोड़कर यहाँ नहीं आया, अपितु सीता के उग्र एवं मर्मवेधी वाक्यों से व्यथित होकर ही मैं आपके पास आया हूँ।

आर्येणेव पराक्रुष्टं हा सीते लक्ष्मणेति च।
परित्राहीति तद्वाक्यं मैथिल्यास्तत् श्रुतिं गतम्॥ ११॥

आप ही ने—'हा लक्ष्मण! हा सीते! मुझे बचाओ'—ऐसा उच्च स्वर से कहा था। आपके इस वाक्य को सीताजी ने सुन लिया।

सा तमार्तस्वरं श्रुत्वा तव स्नेहेन मैथिली।
गच्छ गच्छेति मामाह रुदन्ती भयविह्वला॥ १२॥

आपके इस आर्तनाद को सुन आपसे प्रेम करनेवाली सीता ने भयविह्वल होकर रोते हुए मुझसे कहा—''हे लक्ष्मण! तुम शीघ्र जाओ।''

प्रचोद्यमानेन मया गच्छेति बहुशस्तया।
प्रत्युक्ता मैथिली वाक्यमिदं त्वत्प्रत्ययान्वितम्॥ १३॥

जब सीताजी ने मुझे बार-बार जाने के लिए प्रेरित किया तब आपके सम्बन्ध में विश्वास दिलाने के लिए मैंने ये बातें कहीं—

न तत्पश्याम्यहं रक्षो यदस्य भयमावहेत्।
निर्वृत्ता भव नास्त्येतत्केनाप्येवमुदाहृतम्॥ १४॥

मुझे संसार में ऐसा कोई राक्षस दिखाई नहीं देता जो श्रीराम को भयभीत कर सके, अतः तुम चिन्ता मत करो। यह श्रीराम का नहीं, अपितु किसी का बनावटी शब्द है।

विगर्हितं च नीचं च कथमार्योऽभिधास्यति।
त्राहीति वचनं सीते यस्त्रायेत्त्रिदशानपि॥ १५॥

हे सीते! जो राम अपने भुजबल से देवताओं की भी रक्षा कर सकते हैं वे आर्य-कुलकमल-दिवाकर राम—''मुझे बचाओ''—इस प्रकार का निन्दित और नीच वचन कैसे कह सकते हैं?

विस्वरं व्याहृतं वाक्यं लक्ष्मण त्राहि मामिति।
न भवत्या व्यथा कार्या कुनारीजनसेविता॥ १६॥

''हे लक्ष्मण! मुझे बचाओ।''—इस वाक्य को कहनेवाले के कण्ठ स्वर की विशेष विवेचना करने पर यह श्रीराम का कहा हुआ वाक्य नहीं जान पड़ता, अतः आपको सामान्य स्त्रियों की भाँति दुःखी नहीं होना चाहिए।

अलं वैक्लव्यमालम्ब्य स्वस्था भव निरुत्सुका।
न सोऽस्ति त्रिषु लोकेषु पुमान् वै राघवं रणे॥ १७॥
जातो वा जायमानो वा संयुगे यः पराजयेत्।
न जय्यो राघवो युद्धे देवैः शक्रपुरोगमैः॥ १८॥

व्याकुलता को समाप्त करो, धैर्य धारण करो और स्वस्थ हो जाओ, क्योंकि तीनों लोकों में ऐसा पुरुष न हुआ, न है और न होगा जो संग्राम में श्रीराम के समक्ष ठहर सके या उन्हें पराजित कर सके। इन्द्र के



नेतृत्त्व से युक्त देवताओं से भी संग्राम में श्रीराम अजेय हैं।

एवमुक्ता तु वैदेही परिमोहितचेतना।
उवाचाश्रूणि मुञ्चन्ती दारुणं मामिदं वचः॥ १९॥

मेरे ऐसा कहने पर भी आपके प्रति स्नेह रखनेवाली आर्या सीता आँखों से आँसू बहाती हुई मुझसे ये कठोर वचन बोली—

भावो मयि तवात्यर्थं पाप एव निवेशितः।
विनष्टे भ्रातरि प्राप्तुं न च त्वं मामवाप्स्यसि॥ २०॥

मेरे प्रति तुम्हारे मन में पापमय भाव प्रविष्ट हो गये हैं। श्रीराम के मरने पर तुम मुझे प्राप्त करना चाहते हो, परन्तु तुम किसी भी अवस्था में मुझे प्राप्त न कर सकोगे।

सङ्केताद्भरतेन त्वं रामं समनुगच्छसि।
क्रोशन्तं हि यथात्यर्थं नैवमभ्यवपद्यसे॥ २१॥

तुम भरत के संकेत पर ही श्रीराम का पीछा कर रहे हो, इसीलिए तुम श्रीराम के बार-बार बुलाने पर उनकी सहायतार्थ उनके पास नहीं जाते।

एवमुक्तो हि वैदेह्या संरब्धो रक्तलोचनः।
क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठ आश्रमादभिनिर्गतः॥ २२॥

सीताजी के ऐसा कहने पर मुझे क्रोध आ गया, मेरी आँखें लाल हो गईं और होंठ फड़कने लगे, तब में आश्रम से बाहर चला आया।

एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं रामः सन्तापमोहितः।
अब्रवीद् दुष्कृतं सौम्य तां विना यत्त्वमागतः॥२३॥

श्रीलक्ष्मणजी के ऐसा कहने पर सन्तप्त श्रीराम ने कहा—हे सौम्य! तुम जो सीता को अकेली छोड़कर चले आये यह तुमने अच्छा नहीं किया[१]।

जानन्नपि समर्थं मां रक्षसां निवारणे।
अनेन क्रोधवाक्येन मैथिल्या निःसृतो भवन्॥ २४॥

यह जानते हुए भी कि मैं राक्षसों को नष्ट करने में सर्वथा समर्थ हूँ, तुम सीता के क्रोधपूर्ण वचनों को सुनकर यहाँ चले आये।

न हि ते परि तुष्यामि त्यक्त्वा यद्यासि मैथिलीम्।
क्रुद्धायाः परुषं श्रुत्वा स्त्रियाश्च त्वमिहागतः॥ २५॥

हे लक्ष्मण! जो तुम क्रुद्ध स्त्री के कठोर वचनों को सुनकर उसे अकेली छोड़कर यहाँ चले आये—तुम्हारे इस व्यवहार से मैं प्रसन्न नहीं हूँ।

सर्वथा त्वपनीतं ते सीतया यत्प्रचोदितः।
क्रोधस्य वशमापन्नो नाकरोः शासनं मम॥ २६॥

तुम्हारा यह कार्य सर्वथा नीतिविरुद्ध है जो तुमने सीता के रहने पर क्रुद्ध होकर मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया।

➤ पञ्चत्रिंशः सर्गः ➤ (३५)

राम की व्याकुलता तथा विलाप—

त्वरमाणो जगामाथ सीतादर्शनलालसः।
शून्यमावसथं दृष्ट्वा बभूवोद्विग्नमानसः॥ १॥

सीता के दर्शन की लालसा से राम शीघ्रता-पूर्वक चल पड़े। जब वे आश्रम में पहुँचे तब उन्होंने देखा कि आश्रम सूना पड़ा है। आश्रम को सूना देखकर

१. महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के सभी पात्रों का यथातथ्य वर्णन किया है। जहाँ उन्होंने पात्रों के गुणों एवं विशेषताओं का वर्णन किया है वहाँ पात्रों का चरितचित्रण करते हुए उनके दोषों को भी दिखलाया है। बड़े व्यक्ति छोटों की बात को कैसे ठुकराते हैं, यह प्रसंग इस पर अच्छा प्रकाश डालता है। सीताजी ने लक्ष्मण से जैसे कठोर और निराधार वचन कहे थे उनको सुनकर लक्ष्मणजी का सीता को अकेली छोड़कर चले जाना—लक्ष्मण का दुष्कर्म नहीं कहा जा सकता, फिर भी श्रीराम का लक्ष्मण को ही दोष देना और उन्हें धिक्कारना एवं फटकारना किसी भी रूप में उचित नहीं कहा जा सकता।



राम बहुत उद्विग्न हुए।

विप्रकीर्णाजिनकुशं विप्रविद्धबृसीकटम्।
दृष्ट्वा शून्यं निजस्थानं विललाप पुनः पुनः॥ २॥

उस आश्रम में मृगचर्म और कुशासन इधर-उधर बिखरे पड़े थे, कुश और चटाइयाँ भी इधर-उधर फेंकी हुई थीं। इस प्रकार उस आश्रम को सूना देखकर राम बार-बार विलाप कर रोने लगे।

हृता मृता वा नष्टा वा भक्षिता वा भविष्यति।
निलीनाप्यथवा भीरुरथवा वनमाश्रिता॥ ३॥

विलाप करते हुए वे कहने लगे—सीता हर ली गई, मर गई, अपने आप अन्तर्धान हो गई अथवा उसे राक्षसों ने खा डाला अथवा भीरु होने के कारण कहीं छिप रही है अथवा वन में कहीं चली गई है।

गता विचेतुं पुष्पाणि फलान्यपि च वा पुनः।
अथवा पद्मिनीं याता जलार्थं वा नदीं गता॥ ४॥

वह वन से फूल एवं फल चुनने तो नहीं चली गई अथवा जल लाने के लिए किसी नदी या सरोवर पर तो नहीं गई है।

यत्नान्मृगयमाणस्तु नाससाद वने प्रियाम्।
शोकरक्तेक्षणः शोकादुन्मत्त इव लक्ष्यते॥ ५॥

जब प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ने पर भी उस वन में श्रीराम को अपनी प्राणप्रिया सीता नहीं मिली तब शोक के कारण उनकी आँखें लाल हो गईं और वे उन्मत्त-से दिखाई देने लगे।

वृक्षाद् वृक्षं प्रधावन् स गिरेश्चाद्रिं नदान्नदीम्।
बभूव विलपन् रामः शोकपङ्कार्णवाप्लुतः॥ ६॥

श्रीराम शोकरूपी कीचड़ के समुद्र में डूबकर एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष तक, एक पर्वत से दूसरे पर्वत तक और एक नदी से दूसरी नदी तक विलाप करते हुए दौड़ते फिरते थे।

अपि कच्चित्त्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया।
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम्॥ ७॥

वे विलाप करते हुए कहते थे—हे कदम्ब! तुम्हारे फूलों से प्रेम करनेवाली सुन्दरमुखी मेरी प्राणप्रिया सीता को क्या तुमने देखा है? यदि तुम जानते हो तो बताओ सीता कहाँ है?

स्निग्धपल्लवसङ्काशा पीतकौशेयवासिनी।
शंसस्व यदि वा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी॥ ८॥

हे बिल्ववृक्ष! चिकने पल्लव के समान कान्तिवाली, पीली रेशमी साड़ी धारण करनेवाली, बिल्वफल सदृश स्तनवाली सीता को यदि तुमने देखा हो तो बतलाओ वह कहाँ है?

अथवाऽर्जुन शंस त्वं प्रियां तामर्जुनप्रियाम्।
जनकस्य सुता भीरुर्यदि जीवति वा न वा॥ ९॥

हे अर्जुन वृक्ष! तू ही बतला दे कि मेरी प्राणप्रिया सीता जो तुझे बहुत चाहती थी, वह जनकनन्दिनी भीरु जानकी जीवित है या नहीं।

अशोक शोकापनुद शोकोपहतचेतसम्।
त्वन्नामानं कुरु क्षिप्रं प्रियासन्दर्शनेन माम्॥ १०॥

हे अशोक वृक्ष! तुम शोक का नाश करनेवाले हो, अतः शोकापहत चित्तवाले मुझे शीघ्र ही मेरी प्राणप्रिया सीता से मिलाकर अपने अशोक (शोक-रहित) नाम को चरितार्थ करो।

अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम्।
मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत्॥ ११॥

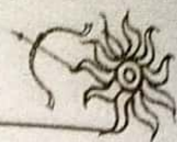
(वृक्षों से पूछकर राम अब पशुओं से पूछते हैं) हे मृग! मृगों के समान देखनेवाली सीता को क्या तुम जानते हो? मेरी कान्ता मृगनयनी सीता निश्चय ही मृगियों के साथ होगी।

किं धावसि प्रिये दूरं दृष्टासि कमलेक्षणे।
वृक्षैराच्छाद्य चात्मानं किं मां न प्रतिभाषसे॥ १२॥

हे प्रिये! तुम भाग क्यों रही हो? हे कमलनयनी अब तो मैंने तुम्हें देख लिया है। तुम अपने-आपको वृक्षों की आड़ में क्यों छिपा रही हो? मेरे साथ बातचीत क्यों नहीं करतीं?

तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करुणा मयि।
नात्यर्थं हास्यशीलाऽसि किमर्थं मामुपेक्षसे॥ १३॥

हे उत्तमाङ्गी सीते! ठहर, ठहर! क्या तुझे मेरे



ऊपर दया नहीं आती ? तेरा स्वभाव इतना हास्यप्रिय तो नहीं था, फिर तू मेरी उपेक्षा क्यों कर रही है ?

हा लक्ष्मण महाबाहो पश्यसि त्वं प्रियां क्वचित्।
हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः ॥ १४॥
इत्येवं विलपन् रामः परिधावन् वनाद्वनम्।
क्वचिदुद्भ्रमते वेगात्क्वचिद्विभ्रमते बलात्॥ १५॥

हा महाबाहो लक्ष्मण! क्या तुम्हें मेरी प्राण प्यारी कहीं दीख पड़ती है ? हा भद्रे! हा सीते! तुम कहाँ चली गईं। इस प्रकार बार-बार विलाप करते हुए और इस वन से उस वन में दौड़ते हुए राम कहीं दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ते और कहीं सीता के सादृश्यवाली किसी वस्तु को देखकर सहसा उद्भ्रान्त हो जाते।

सीतामपश्यन् धर्मात्मा कामोपहतचेतनः।
विलपन् तु महाबाहू लक्ष्मणमब्रवीद्वचः॥ १६॥

महाबाहु धर्मात्मा श्रीराम सीता को न देखकर शोक के मारे चेतना-शून्य होकर विलाप करते हुए लक्ष्मणजी से कहने लगे—

न मद्विधो दुष्कृतकर्मकारी
मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।
शोकेन शोको हि परम्पराया
मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च॥ १७॥

हे लक्ष्मण! मैं समझता हूँ इस भूमण्डल पर मेरे समान दुष्कर्म करनेवाला पापी पुरुष और कोई नहीं हैं, क्योंकि एक के पश्चात् एक दुःखों की अविच्छिन्न परम्परा निरन्तर मेरे हृदय और मन को विदीर्ण किये डालती है।

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि
पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि।
तत्रायमद्यापतितो विपाको
दुःखेन दुःखं यदहं विशामि॥ १८॥

पूर्वजन्म में निश्चय ही मैंने एक के पश्चात् एक यथेष्ट पाप किये हैं उन्हीं पापों का फल आज मुझे प्राप्त हो रहा है और मेरे ऊपर दुःख के ऊपर दुःख आ रहे हैं।

राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः
पितुर्विनाशो जननीवियोगः।
सर्वाणि मे लक्ष्मण शोकवेगं
आपूरयन्ति प्रविचिन्तितानि॥ १९॥

हे लक्ष्मण! राज्य हाथ से छिन गया, स्वजनों का वियोग हो गया, पिताजी परलोक सिधार गये और माताजी से विछोह हो गया। इन घटनाओं का स्मरण करने पर मेरा हृदय शोक से परिपूर्ण हो जाता है।

सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं
शान्तं शरीरे वनमेत्य शून्यम्।
सीता वियोगात्पुनरप्युदीर्णं
काष्ठैरिवाग्निः सहसा प्रदीप्तः॥ २०॥

हे लक्ष्मण! ये सारे दुःख इस रमणीय शून्य वन में आने पर शान्त हो गये थे, परन्तु आज सीता के वियोग से वे सभी विस्मृत दुःख उसी प्रकार नये एवं हरे हो गये हैं जिस प्रकार लकड़ी डालने से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

इतीव तं शोकविधेयदेहं
रामं विसंज्ञं विलपन्तमेवम्।
उवाच सौमित्रिरदीनसत्त्वो
न्याये स्थितः कालयुतं च वाक्यम्॥ २१॥

श्रीराम को शोक से विह्वल और विलाप करते-करते चेतनाहीन देखकर न्याय-पथ पर चलनेवाली उदारचेता, धीर लक्ष्मण कालोचित ये वचन बोले—

शोकं विमुञ्चार्य धृतिं भजस्व
सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः।
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके
सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु॥ २२॥

हे आर्य! शोक को त्याग कर धैर्य धारण कीजिए, फिर उत्साहपूर्वक सीताजी को खोजिए, क्योंकि उत्साही मनुष्य इस सार में कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी दुःखी नहीं होते।

इतीव सौमित्रिमुदग्रपौरुषं
ब्रुवन्तमार्तो रघुवंशवर्धनः।
न चिन्तायामास धृतिं विमुक्तवान्
पुनश्च दुःखं महदभ्युपागमत्॥ २३॥

विख्यात पराक्रमवाले लक्ष्मण के ऐसा कहने पर भी रघुकुलशिरोमणि श्रीराम ने दुःखी होने के कारण उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, अपितु धैर्य त्याग कर वे महान् दुःख प्रकट करने लगे।

❮ षट्त्रिंशः सर्गः ❯ (३६)

सीता की खोज और जटायु का अन्त्येष्टि-संस्कार

स दीनो दीनया वाचा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत्।
वक्तुकामा इव मृगा मामीक्षन्ते मुहुर्मुहुः॥ १॥

दीन-दुःखी राम आर्त शब्दों में लक्ष्मण से बोले—हे वीर! ये मृग मेरी ओर बार-बार इस प्रकार देख रहे हैं मानो मुझसे कुछ कहना चाहते हैं।

तांस्तु दृष्ट्वा नरव्याघ्रो राघवः प्रत्युवाच ह।
क्व सीतेति निरीक्षन्वै बाष्पसंरुद्धया दृशा॥ २॥

लक्ष्मण से ऐसा कहकर उन मृगों की ओर देखते हुए नरकेसरी श्रीराम ने रुद्ध कण्ठ से उनसे पूछा—हे मृगो! सीता कहाँ है?

एवमुक्ता नरेन्द्रेण ते मृगाः सहसोत्थिताः।
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे दर्शयन्तो नभःस्थलम्॥ ३॥

श्रीराम के ऐसा पूछने पर वे मृग सहसा उठकर आकाश-मार्ग को दिखलाते हुए दक्षिण की ओर मुँह करके दौड़ने लगे।

मैथिली ह्रियमाणा सा दिशं यामन्वपद्यत।
तेन मार्गेण धावन्तो निरीक्षन्ते नराधिपम्॥ ४॥

जिस मार्ग से रावण सीता को हर कर ले गया था वे उसी ओर दौड़े। उस मार्ग पर दौड़ते हुए वे मृग पीछे मुड़-मुड़कर श्रीराम को देखते जाते थे।

लक्षयित्वा चेङ्गितं तेषां लक्ष्मणो ज्येष्ठमब्रवीत्।
क्व सीतेति त्वया पृष्टा यथेमे सहसोत्थिताः॥ ५॥
दर्शयन्ति क्षितिं चैव दक्षिणां च दिशं मृगाः।
साधु गच्छावहै देव दिशमेतां हि नैर्ऋतिम्॥ ६॥

उन मृगों की चेष्टाओं को देखकर लक्ष्मणजी ने अपने बड़े भाई राम से कहा—आपके यह पूछने पर कि सीता कहाँ है, ये मृग सहसा खड़े हो गये और उधर दौड़ते हुए हमें आकाश और दक्षिण दिशा दिखला रहे हैं, अतः हे देव! हमें दक्षिण दिशा की ओर ही चलना चाहिए।

यदि स्यादागमः कश्चिदार्या वा साऽथ लक्ष्यते।
बाढमित्येव काकुत्स्थ प्रस्थितो दक्षिणां दिशम्॥ ७॥

सम्भव है उस ओर जाने से सीता मिल ही जाए अथवा उसका पता लग जाए। लक्ष्मण की यह बात सुन श्रीराम "बहुत अच्छा" कहकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिये।

अथ दाशरथी रामो गच्छन् लक्ष्मणेन सह।
ददर्श भूमौ निष्क्रान्तं राक्षसस्य पदं महत्॥ ८॥

दशरथनन्दन श्रीराम ने लक्ष्मणजी के साथ जाते हुए मार्ग में किसी राक्षस का एक विशाल पदचिह्न देखा।

त्रस्ताया रामकाङ्क्षिण्याः प्रधावन्त्या इतस्ततः।
राक्षसेनानुवृत्ताया मैथिल्याश्च पदान्यथ॥ ९॥
स समीक्ष्य परिक्रान्तं सीताया राक्षसस्य च।
भग्नं धनुश्च तूणी च विकीर्णं बहुधा रथम्॥ १०॥

उन्होंने राम में अनुराग रखनेवाली, त्रस्त होकर इधर-उधर दौड़ती हुई और राक्षस द्वारा पीछा की जाती हुई सीता के चरणचिह्नों को भी देखा। सीता और राक्षस के पदचिह्नों को देखते हुए आगे चलकर राम ने टूटे हुए धनुष, तरकस और रथ को देखा।



सम्भ्रान्तहृदयो रामः शशंस भ्रातरं प्रियम्।
पश्य लक्ष्मण वैदेह्याः शीर्णाः कनकबिन्दवः ॥ ११ ॥

इन सबको देखकर श्रीराम ने उद्विग्न हो अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण! देखो ये सीताजी के सोने के घुँघरू जहाँ-तहाँ पड़े हैं।

धरण्यां पतितं सौम्य कस्य भग्नं महद्धनुः।
विशीर्णं पतितं भूमौ कवचं कस्य काञ्चनम् ॥ १२ ॥

हे सौम्य! टूटकर पृथिवी पर पड़ा हुआ यह धनुष किसका है? और यह सोने का कवच किसका टूटा पड़ा है?

कस्येमेऽभिहिता बाणाः प्रकीर्णा घोरकर्मणः।
शरावरौ शरैः पूर्णौ विध्वस्तौ पश्य लक्ष्मण ॥ १३ ॥

ये टूटे हुए भयंकर बाण किसके हैं? हे लक्ष्मण! देखो! बाणों से भरे ये दोनों तरकस किसके पड़े हुए हैं?

ततः पर्वतकूटाभं महाभागं द्विजोत्तमम्।
ददर्शपतितं भूमौ क्षतजार्द्रं जटायुषम् ॥ १४ ॥

थोड़ा और आगे जाने पर श्रीराम ने विशालकाय, महाभाग, द्विजातियों में श्रेष्ठ रक्त से सने हुए एवं भूमि पर पड़े हुए जटायु को देखा।

तं दृष्ट्वा गिरिशृङ्गाभं रामो लक्ष्मणमब्रवीत्।
अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशयः ॥ १५ ॥

उस विशालकाय, तपस्वी जटायु को देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—अब इस बात में कोई संदेह नहीं है कि इसी ने सीता का भक्षण किया है।

गृध्ररूपमिदं रक्षो व्यक्तं भ्रमति कानने।
एनं वधिष्ये दीप्तास्यैर्घोरैर्बाणैरजिह्मगैः ॥ १६ ॥

तपस्वी के रूप में यह राक्षस ही है जो इस वन में घूम रहा है। अतः अब मैं सीधे चलनेवाले देदीप्यमान बाणों से इसका वध करूँगा।

इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्गृध्रं सन्धाय धनुषि क्षुरम्।
क्रुद्धो रामः समुद्रान्तां कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ १७ ॥

यह कहकर और अपने धनुष पर 'क्षुर' नामक बाण को चढ़ाकर, समुद्र पर्यन्त पृथिवी को कम्पायमान करते हुए क्रुद्ध राम जटायु को देखने के लिए आगे बढ़े।

तं दीनं दीनया वाचा सफेनं रुधिरं वमन्।
अभ्यभाषत पक्षी तु रामं दशरथात्मजम् ॥ १८ ॥

श्रीराम को अपनी ओर आते देख तपस्वी जटायु मुख से फेनयुक्त रुधिर वमन करते हुए दुःखी होकर दीन शब्दों में दशरथनन्दन श्रीराम से बोले—

यामोषधिमिवायुष्मन्नन्वेषसि महावने।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ॥ १९ ॥

हे आयुष्मन्! ओषधि के समान जिस सीता को तुम वन में खोजते फिरते हो उस देवी सीता तथा मेरे प्राणों को रावण हर कर ले गया है।

त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ॥ २० ॥

हे राम! आपकी और लक्ष्मण की अनुपस्थिति में सूने आश्रम से सीता का अपहरण करके ले जाते हुए महाबली रावण को मैंने देखा है।

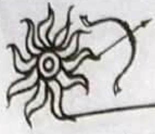
सीतामभ्यवपन्नोऽहं रावणश्च रणे मया।
विध्वंसितरथश्चात्र पातितो धरणीतले ॥ २१ ॥

हे राम! संकट में पड़ी हुई सीता की रक्षा के लिए मैंने रावण का सामना किया और उससे युद्ध करके उसके रथ को तोड़कर भूमि पर गिरा दिया।

एतदस्य धनुर्भग्नमेतदस्य शरावरम्।
परिश्रान्तस्य मे पक्षौ च्छित्त्वाखड्गेन रावणः ॥ २२ ॥
सीतामादाय वैदेहीमुत्पपात विहायसम्।
रक्षसा निहतं पूर्वं न मां हन्तुं त्वमर्हसि ॥ २३ ॥

यह उसका टूटा हुआ धनुष पड़ा है और ये उसके श्रेष्ठ बाण हैं। हे राम! जब मैं युद्ध करते-करते थक गया तब रावण ने अपनी तलवार से मेरे कन्धों को काट डाला और सीता को लेकर आकाश-मार्ग से चला गया। मैं तो पहले ही राक्षस का मारा हुआ हूँ। अब आपको मुझे मारने योग्य नहीं है।

रामस्तस्य तु विज्ञाय बाष्पपूर्णमुखस्तदा।
द्विगुणीकृततापार्तः सीतासक्तां प्रियां कथाम् ॥ २४ ॥



गृध्रराजं परिष्वज्य परित्यज्य महद्धनुः।
निपपातावशो भूमौ रुरोद सहलक्ष्मणः॥ २५॥

जटायु से प्राणप्रिया सीता का वृत्तान्त सुन और उसकी दीन-हीन दशा को देखकर श्रीराम का मुख आँसुओं से परिपूर्ण हो गया और उनका संताप द्विगुणित हो गया। उन्होंने अपने धनुष को फेंककर जटायु को हृदय से लगा लिया। वे विवश होकर पृथिवी पर गिर पड़े और लक्ष्मण सहित फूट-फूटकर रोने लगे।

राज्याद् भ्रंशो वने वासः सीता नष्टा द्विजो हतः।
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्निर्हेदपि पावकम्॥ २६॥

रोते-रोते वे कहने लगे—मैं राज्य से च्युत हो गया, वन में वास कर रहा हूँ, सीता का अपहरण हो गया और मेरे ही कारण यह तपस्वी जटायु भी मारा गया। यह सब मेरे खोटे भाग्य का ही परिणाम है। इस प्रकार का भाग्य अग्नि को भी भस्म कर सकता है।

सम्पूर्णमपि चेदद्य प्रतरेयं महोदधिम्।
सोऽपि नूनं ममालक्ष्म्या विशुष्येत्सरितां पतिः॥ २७॥

मैं अपने भाग्य के सम्बन्ध में कहाँ तक कहूँ? यदि आज मैं अपने सन्ताप की शान्ति के लिए समुद्र में भी कूदूँ तो वह भी मेरे खोटे भाग्य के कारण सूख जायेगा।

नास्त्यभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन् सचराचरे।
येनेयं महती प्राप्ता मया व्यसनवागुरा॥ २८॥

हे भाई! इस चराचर जगत् में मुझसे बढ़कर अभागा पुरुष कौन होगा? इस खोटे भाग्य के ही कारण मैं विपत्तियों के भयंकर जाल में फँस गया हूँ।

अयं पितृवयस्यो मे गृध्रराजो जरान्वितः।
शेते विनिहतो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात्॥ २९॥

देखो! मेरे पूज्य पिता के परममित्र यह वृद्ध तपस्वी जटायु मेरे भाग्य के विपरीत होने के कारण आहत होकर पृथिवी पर पड़ा है।

इत्येवमुक्त्वा बहुशो राघवः सहलक्ष्मणः।
जटायुषं च पस्पृश्य रामो वचनमब्रवीत्॥ ३०॥

इस प्रकार राम और लक्ष्मण ने अनेक प्रकार की बातें कहते हुए जटायु का स्पर्श किया। तदनन्तर राम ने पूछा—

जटायो यदि शक्नोषि वाक्यं व्याहरितुं पुनः।
सीतामाख्याहि भद्रं ते वधमाख्याहि चात्मनः॥ ३१॥

हे जटायु! यदि तुममें बोलने की शक्ति हो तो तुम सीता के हरण और अपने वध का सम्पूर्ण समाचार मुझे पुनः सुनाओ।

कथंवीर्यः कथंरूपः किं कर्मा स च राक्षसः।
क्व चास्य भवनं तात ब्रूहि मे परिपृच्छतः॥ ३२॥

उस राक्षस का पराक्रम कैसा है? उसकी आकृति कैसी है? वह क्या करता है और कहाँ रहता है? हे तात! मैं जो कुछ पूछ रहा हूँ आप बताइए।

तमुद्वीक्ष्याथ दीनात्मा विलपन्तमनन्तरम्।
वाचाऽति सन्नया रामं जटायुरिदमब्रवीत्॥ ३३॥

अनाथ के समान करुणापूर्ण शब्दों में विलाप करते हुए श्रीराम को देखकर जटायु ने अत्यन्त क्षीण वाणी से कहा—

हृता सा राक्षसेन्द्रेण रावणेन विहायसा।
पुत्रो विश्रवसः साक्षाद् भ्राता वैश्रवणस्य च॥ ३४॥

विश्रवा का पुत्र और कुबेर का भाई राक्षसराज रावण सीता का अपहरण करके उसे आकाश-मार्ग से ले गया है।

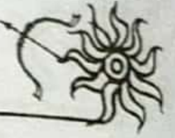
परिश्रान्तस्य मे तात पक्षौ च्छित्त्वा च राक्षसः।
सीतामादाय वैदेहीं प्रयातो दक्षिणां दिशम्॥ ३५॥

जब मैं उस दुष्ट के साथ युद्ध करते-करते थक गया तब वह मेरे कन्धों को काटकर सीता को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चला गया।

इत्युक्त्वा दुर्लभान् प्राणान् मुमोच पतगेश्वरः।
गतासुं तं गृध्रं प्रेक्ष्य रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ ३६॥

ऐसा कहकर तपस्वी जटायु ने अपने दुर्लभ प्राणों को त्याग दिया।[1] उसे प्राणहीन देखकर श्रीराम ने

१. इस प्रसङ्ग में सन्त तुलसीदासजी ने भी एक सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—



लक्ष्मण से कहा—

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम्।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परन्तप॥ ३७॥

हे सौम्य! अब मुझे सीता के अपहरण का इतना दुःख नहीं है जितना कि मेरे लिए अपने प्राणों की आहुति देनेवाले तपस्वी जटायु की मृत्यु का दुःख हो रहा है

राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथाऽयं पतगेश्वरः॥ ३८॥

जिस प्रकार महायशस्वी महाराज दशरथ मेरे पूज्य एवं मान्य हैं उसी प्रकार यह तपस्विराज जटायु भी मेरे लिए आदरणीय हैं।

सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम्।
गृध्रराजं दिधक्षामि मत्कृते निधनं गतम्॥ ३९॥

हे लक्ष्मण! काष्ठों का संचय करो। मैं अग्निमन्थन कर उस अग्नि से तपस्विराज जटायु का अन्त्येष्टि-संस्कार करूँगा।

एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम्।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः॥ ४०॥

ऐसा कहकर उस तपस्वी श्रेष्ठ जटायु के मृत शरीर को चिता पर रखकर धर्मात्मा राम ने दुःखी होकर अपने बन्धु-बान्धवों की भाँति जटायु का दाहकर्म किया।

➤ सप्तत्रिंशः सर्गः ➤ (३७)

राक्षसी अयोमुखी और कबन्ध से मुठभेड़—

कृत्वैवमुदकं तस्मै प्रस्थितौ रामलक्ष्मणौ।
अवेक्षन्तौ वने सीतां पश्चिमां जग्मतुर्दिशम्॥ १॥

तत्पश्चात् राम-लक्ष्मण दोनों वीर उस तपस्वी जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया आदि कृत्यों को पूर्ण कर वहाँ से प्रस्थानित हुए। वे वन में सीता को खोजते हुए पश्चिम दिशा की ओर चले।

यतः परं जनस्थानात्त्रिकोशं गम्य राघवौ।
क्रौञ्चारण्यं विविशतुर्गहनं तौ महौजसौ॥ २॥

जनस्थान से तीन कोस चलने के पश्चात् महाबली राम और लक्ष्मण क्रौञ्च नामक महावन में प्रविष्ट हुए।

दिदृक्षमाणौ वैदेहीं तद्वनं तौ विचिक्यतुः।
यत्र तत्रावतिष्ठन्तौ सीताहरणकर्शितौ॥ ३॥

सीता के अपहरण से दुःखी दोनों राजकुमार यत्र-तत्र बैठकर विश्राम करते हुए सीता को देखने की अभिलाषा से उस वन में इधर-उधर खोजने जाते थे।

ततः पूर्वेण तौ गत्वा त्रिकोशं भ्रातरौ तदा।
क्रौञ्चारण्यमतिक्रम्य मतङ्गाश्रममन्तरे॥ ४॥

तदनन्तर वे दोनों राजकुमार उस वन में तीन कोस पूर्व की ओर जाकर क्रौञ्चारण्य को पार कर महर्षि मतङ्ग के आश्रम में पहुँचे।

दृष्ट्वा तु तद्वनं घोरं बहुभीममृगद्विजम्।
नाना सत्त्वसमाकीर्णं सर्वं गहनपादपम्॥ ५॥

मतङ्गाश्रमवाला वह वन वनैले भयंकर जीव-जन्तुओं और सघन वृक्षों से परिपूर्ण तथा भय उत्पन्न करनेवाला था।

ददृशाते तु तौ तत्र दरीं दशरथात्मजौ।
पातालसमगम्भीरां तमसा नित्यसंवृताम्॥ ६॥

मतङ्ग वन की पहाड़ी पर दशरथ-कुमार राम-लक्ष्मण ने एक विशाल पर्वत-कन्दरा को देखा जो पाताल के समान गहरी और अन्धकार से आवृत्त थी।

सीता हरन तात जन कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहहि दसानन आइ॥



आसाद्य तौ नरव्याघ्रौ दर्यास्तस्याविदूरतः।
ददृशाते महारूपां राक्षसीं विकृताननाम्॥ ७॥

उस पर्वत-कन्दरा के समीप पहुँचने पर नरकेसरी राम-लक्ष्मण ने वहाँ भयंकर रूपवाली एवं विकराल मुखवाली एक राक्षसी को देखा।

सा समासाद्य तौ वीरौ व्रजन्तं भ्रातुरग्रतः।
एहि रंस्यावहेत्युक्त्वा समालम्बत लक्ष्मणम्॥ ८॥

वह राक्षसी भी उन दोनों भाइयों को देख उनके समीप आ, आगे चलते हुए लक्ष्मण से बोली—"आओ, हम दोनों विहार करें"—ऐसा कहकर उसने लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया।

उवाच चैनं वचनं सौमित्रिमुपगुह्य सा।
अहं त्वयोमुखी नाम लाभस्ते त्वमसि प्रियः॥ ९॥

लक्ष्मणजी का आलिंगन कर वह कहने लगी—मेरा नाम अयोमुखी है। तुम मुझे बड़े प्रिय हो और बड़े भाग्य से ही तुम मुझे प्राप्त हुए हो।

नाथ पर्वतकूटेषु नदीनां पुलिनेषु च।
आयुः शेषमिमं वीर त्वं मया सह रंस्यसे॥ १०॥

हे नाथ! इन दुर्गम पर्वतों में और नदियों के तटों पर तुम अपनी आयु के शेष भाग को मेरे साथ सुखपूर्वक विहार करते हुए व्यतीत करना।

एवमुक्तस्तु कुपितः खड्गमुद्धृत्य लक्ष्मणः।
कर्णनासौ स्तनौ चास्या निचकर्तारिसूदनः॥ ११॥

उसके ऐसा कहने पर शत्रुसंहारक लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर म्यान से तलवार निकाल उसके नाक, कान और स्तनों को काट डाला।

कर्णनासे निकृत्ते तु विस्वरं सा विनद्य च।
यथागतं प्रदुद्राव राक्षसी भीमदर्शना॥ १२॥

कानों और नाक के कट जाने पर वह विकराल राक्षसी भयंकर नाद करती हुई जिधर से आई थी उधर ही भाग खड़ी हुई।

तस्यां गतायां गहनं विशन्तौ वनमोजसा।
आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥ १३॥

उस राक्षसी के भाग जाने पर शत्रुसंहारक और महातेजस्वी दोनों भाई वहाँ से शीघ्रता-पूर्वक चलकर एक दूसरे गहन वन में पहुँचे।

तयोरन्वेषतोरेवं सर्वं तद्वनमोजसा।
संजज्ञे विपुलः शब्दः प्रभञ्जन्निव तद्वनम्॥ १४॥

जिस समय महापराक्रमी राम और लक्ष्मण उस वन को खोज रहे थे उस समय ऐसा भीषण शब्द हुआ की सारी वनस्थली कम्पायमान हो गई।

तं शब्दं काङ्क्षमाणस्तु रामः कक्षे सहानुजः।
ददर्श सुमहाकायं राक्षसं विपुलोरसम्॥ १५॥

लक्ष्मणसहित श्रीराम उस भीषण शब्द को जानने की आकांक्षा कर ही रहे थे कि उन्होंने पास ही वृक्षों के झुण्ड में विशाल वक्षस्थलवाले एक विकराल राक्षस को देखा।

स महाबाहुरत्यर्थं प्रसार्य विपुलौ भुजौ।
जग्राह सहितावेव राघवौ पीडयन्बलात्॥ १६॥

उस विशाल भुजाओंवाले कबन्ध नामक राक्षस ने अपनी लम्बी भुजाएँ फैलाकर राम और लक्ष्मण को बलपूर्वक पकड़ लिया।

खड्गिनौ दृढधन्वानौ तिग्मतेजोवपुर्धरौ।
भ्रातरौ विवशं प्राप्तौ कृष्यमाणौ महाबलौ॥ १७॥

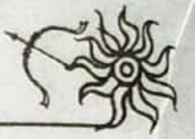
धनुर्धारी, हाथ में खड्ग लिये हुए अत्यन्त तेजस्वी और दीर्घबाहु दोनों भाई उस राक्षस द्वारा पकड़े जाने पर विवश हो गये।

तत्र धैर्येण शूरस्तु राघवो नैव विव्यथे।
बाल्यादनाश्रयत्वाच्च लक्ष्मणस्त्वतिविव्यथे॥ १८॥

धैर्यशाली वीर रामचन्द्र तो उस राक्षस की पकड़ में आ जाने के कारण व्यथित नहीं हुए, परन्तु अज्ञानवश धैर्य को त्याग लक्ष्मणजी उसकी पकड़ में आने से बहुत दुःखी हुए।

उवाच च विषण्णः सन् राघवं राघवानुजः।
पश्य मां वीर विवशं राक्षसस्य वशंगतम्॥ १९॥

दुःखी होकर रामानुज लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा—हे वीर! मुझे देखो, मैं राक्षस के फन्दे में फँसकर विवश हो गया हूँ।



मयैकेन विनिर्युक्तः परिमुञ्चस्व राघव।
मां हि भूतबलिं दत्त्वा पलायस्व यथासुखम्॥ २०॥

हे राम! आप मुझे राक्षस को सौंपकर, मुझ एक की बलि चढ़ाकर यहाँ से सुखपूर्वक चले जाइए।

अधिगन्ताऽसि वैदेहीमचिरेणेति मे मतिः।
प्रतिलभ्य च काकुत्स्थ पितृपैतामहीं महीम्॥ २१॥
तत्र मां राम राज्यस्थः स्मर्तुमर्हसि सर्वदा।
लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तु रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ २२॥

हे काकुत्स्थ राम! आपको सीता अवश्य मिलेगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पिता-पितामह के द्वारा पालित इस पृथिवी को प्राप्त करके और राज्यसिंहासन पर बैठकर सदा मेरा स्मरण करते रहना। जब लक्ष्मणजी ने ऐसा कहा तब श्रीराम बोले—

मा स्म त्रासं कृथा वीर न हि त्वादृग्विषीदति।
एतस्मिन्नन्तरे क्रूरो भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥
पप्रच्छ घननिर्घोषः कबन्धो दानवोत्तमः॥ २३॥

हे वीर! भयभीत मत होओ। तुम्हारे जैसा वीर व्यक्ति इस प्रकार दुःखी नहीं होता। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए राम-लक्ष्मण से उस दानवश्रेष्ठ क्रूर कबन्ध ने पूछा—

कौ युवां वृषभस्कन्धौ महाखड्गधनुर्धरौ।
घोरं देशमिमं प्राप्तौ मम भक्ष्यावुपस्थितौ॥ २४॥

वृषभ के समान ऊँचे कन्धोंवाले, खड्ग और धनुषधारी तुम दोनों कौन हो? इस घोर वन में आकर तुम मेरे भक्ष्य बने हो।

तत् श्रुत्वा लक्ष्मणो वाक्यं प्राप्तकालं हितं तदा।
उवाचार्ति समापन्नो विक्रमे कृतनिश्चयः॥ २५॥

कबन्ध के वचनों को सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित हो अपने हित के लिए पराक्रम का निश्चय कर श्रीराम से समयानुकूल वचन बोले—

त्वां च मां च पुरा तूर्णमादत्ते राक्षसाधमः।
तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहू छिन्दावहै गुरू॥ २६॥

देखो, इस राक्षसाधम ने पहले से ही शीघ्रतापूर्वक हम दोनों को पकड़ लिया है, अतः हम दोनों अपनी तलवारों से इसकी ये दोनों बड़ी-बड़ी भुजाएँ काट डालें।

एतत्सञ्जल्पितं श्रुत्वा तयोः क्रुद्धस्तु राक्षसः।
विदार्यास्यं ततो रौद्रं तौ भक्षयितुमारभत्॥ २७॥

उन दोनों की इन बातों को सुनकर वह राक्षस क्रुद्ध होकर और अपना भयंकर मुँह फैलाकर उन दोनों का भक्षण करने के लिए तैयार हुआ।

ततस्तौ देशकालज्ञौ खड्गाभ्यामेव राघवौ।
आच्छिन्दतां सुसंहृष्टौ बाहू तस्यांसदेशतः॥ २८॥

उस समय देश और काल को जाननेवाले राम और लक्ष्मण ने अपनी-अपनी तीक्ष्ण तलवारों से उसकी दोनों भुजाओं को सहज में ही कन्धे से काट डाला।

स पपात महाबाहुच्छिन्नबाहुर्महास्स्वनः।
खं च गां च दिशश्चैव नादयञ्जलदो यथा॥ २९॥

भुजाओं के कटने पर महाबाहु कबन्ध मेघ की भाँति भयंकर गर्जना कर उससे आकाश, पृथिवी और समस्त दिशाओं को पूरित करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा।

स निकृतौ भुजौ दृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः।
दीनः पप्रच्छ तौ वीरौ कौ युवामिति दानवः॥ ३०॥

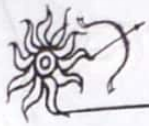
रक्त से लथपथ अपनी दोनों कटी हुई भुजाओं को देखकर दीनतापूर्वक उस दानव ने पूछा—तुम दोनों युवक कौन हो?

इति तस्य ब्रुवाणस्य लक्ष्मणः शुभलक्षणः।
शशंस राघवं तस्य कबन्धस्य महाबलः॥ ३१॥

कबन्ध के ऐसा पूछने पर शुभलक्षणों से युक्त महाबली लक्ष्मण ने कबन्ध को श्रीराम का परिचय देते हुए कहा—

अयमिक्ष्वाकुदायादो रामो नाम जनैः श्रुतः।
अस्यैवावरजं विद्धि भ्रातरं मां च लक्ष्मणम्॥ ३२॥

ये इक्ष्वाकुवंशीय राज्य के उत्तराधिकारी हैं। ये संसार में राम के नाम से विख्यात हैं। मैं इनका छोटा भाई हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है।



मात्रा प्रतिहते राज्ये रामः प्रव्राजितो वनम्।
मया सह चरत्येष भार्यया च महद्वनम्॥ ३३॥

राज्याभिषेक के समय इनकी सौतेली माता ने विघ्न डालकर इन्हें वन में भेज दिया। राज्य से च्युत होकर ये मेरे तथा अपनी धर्मपत्नी के साथ महावन में विचरण कर रहे थे।

अस्य देवप्रभावस्य वसतो विजने वने।
रक्षसाऽपहृता पत्नी यामिच्छन्ताविहागतौ॥ ३४॥

इन देवतुल्य प्रभावशाली श्रीराम की धर्मपत्नी को, इस विजन वन में निवास करते हुए किसी ने हर लिया है। उसी को खोजते हुए हम यहाँ आये हैं।

निवासं वा प्रभावं वा वयं तस्य न विद्महे।
कुरु कल्याणमत्यर्थं यदि जानासि तत्त्वतः॥ ३५॥

हम नहीं जानते कि वह राक्षस कहाँ का रहनेवाला है और उसका प्रभाव कैसा है? यदि आपको इस विषय में कुछ ज्ञात हो तो कृपया हमें बताइए इससे हमारा बड़ा कल्याण होगा।

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा कबन्धो वाक्यमब्रवीत्।
शृणु राघव तत्त्वेन यथा सीतामवाप्स्यसि॥ ३६॥

लक्ष्मण की बात सुनकर कबन्ध ने श्रीराम को सम्बोधित करते हुए कहा—हे राम! तुम्हें सीता किस प्रकार प्राप्त होगी मैं उसका उपाय बतलाता हूँ, आप सुनें—

राम षड्युक्तयो[1] लोके याभिः सर्वं विमृश्यते।
परिमृष्टो दशान्तेन दशाभागेन सेव्यते॥ ३७॥

हे राम! संसार में किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए छह युक्तियाँ हैं। श्रेष्ठजन इन्हीं उपायों से अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं। जो मनुष्य दुर्दशाग्रस्त हो जाता है उसकी दुर्दशा ही होती चली जाती है।

तदवश्यं त्वया कार्यः स सुहृत्सुहृदां वर।
अकृत्वा हि न ते सिद्धिमहं पश्यामि चिन्तयन्॥ ३८॥

अपनी दुर्दशा को समाप्त करने और सीता की प्राप्तिरूपी कार्य में सिद्धि एवं सफलता प्राप्त करने के लिए हे सुहृदों में श्रेष्ठ! आप इन उपायों में से प्रथम उपाय 'सन्धि' का आश्रय लेकर वक्ष्यमाण उस व्यक्ति के साथ अवश्य मित्रता करो। उसकी मित्रता के बिना आपके लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकेगी, ऐसा मेरा विचार है।

श्रूयतां राम वक्ष्यामि सुग्रीवो नाम वानरः।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन बालिना शक्रसूनुना॥ ३९॥

हे राम! सुनो, मैं उसके सम्बन्ध में बतलाता हूँ। सुग्रीव नामक एक वानर है। इन्द्रपुत्र बाली ने क्रुद्ध होकर अपमानपूर्वक उसे राज्य से निकाल दिया है।

ऋष्यमूके गिरिवरे पम्पापर्यन्तशोभिते।
निवसत्यात्मवान् वीरश्चतुर्भिः सह वानरैः॥ ४०॥

वह आत्माभिमानी वीर अपने चार साथी वानरों के साथ पम्पा सरोवर के तट पर शोभायमान ऋष्यमूक नामक सुन्दर पर्वत पर वास करता है।

वानरेन्द्रो महावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः।
सत्यसन्धोविनीतश्च धृतिमान् मतिमान् महान्॥ ४१॥

वह वानरों का राजा सुग्रीव अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी, अमित प्रतापी, सत्यप्रतिज्ञ, विनीत, धैर्यवान् और बड़ा बुद्धिमान् है।

स ते सहायो मित्रं च सीतायाः परिमार्गणे।
भविष्यति हि ते राम मा च शोके मनः कृथाः॥ ४२॥

वह तुमसे मित्रता करेगा और सीता को ढूँढ़ने में तुम्हें सहायता भी देगा, इसलिए हे राम! तुम शोक मत करो।

गच्छ शीघ्रमितो राम सुग्रीवं तं महाबलम्।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव॥ ४३॥

हे राम! अब आप यहाँ से शीघ्र ही महाबली सुग्रीव के पास जाइए। वहाँ पहुँचकर उससे मैत्री कर लो।

१. वे छह उपाय हैं—१. सन्धि=मित्रता, २. विग्रह, ३. याम, ४. आसन, ५. द्वैधीभाव और ६. समाश्रय।



एष राम शिवः पन्था यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः।
प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्ते मनोरमाः॥ ४४॥

हे राम! पश्चिम दिशा में फूलों से लदे हुए ये जो मनोहारी वृक्ष दिखाई दे रहे हैं, वहाँ जाने के लिए यह मार्ग ही सुखदायी होगा।

अष्टात्रिंशः सर्गः (३८)

शबरी द्वारा राम का आतिथ्य—

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पायां दर्शितं वने।
प्रतस्थतुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ॥ १॥

मनुष्यों में श्रेष्ठ वे दोनों राजकुमार कबन्ध के बतलाये पम्पा-मार्ग को लक्ष्य करके पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े।

तौ पुष्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम्।
अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम्॥ २॥

कमलों से भरे हुए पम्पा-सरोवर के पश्चिम तट पर पहुँचकर राम-लक्ष्मण ने तपस्विनी शबरी के रमणीय आश्रम को देखा।

तौ तत्राश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम्।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः॥ ३॥

वे दोनों भाई नाना प्रकार के वृक्षों से आवृत उस आश्रम में पहुँच और वहाँ की रमणीयता को देखते हुए शबरी के निकट पहुँचे।

तौ च दृष्ट्वा तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
रामस्य पादौ जग्राह लक्ष्मणस्य च धीमतः॥ ४॥

वह सिद्धा शबरी उन दोनों भाइयों को देखते ही हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। तत्पश्चात् उसने महाबुद्धिमान् उन दोनों भाइयों का चरण स्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया और बोली—

मया तु विविधं वन्यं सञ्चितं पुरुषर्षभ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पम्पायास्तीरसम्भवम्[१]॥ ५॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! मैंने पम्पा-सरोवर के निकटवर्ती वन में उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकार के कन्दमूल-फलों को आपके लिए इकट्ठा कर रखा है।

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं शंसितव्रताम्॥ ६॥

ऐसा कह उस शबरी ने उन्हें अर्घ्य, पाद्य, आचमनादि यथाविधि प्रदान कर उनका आतिथ्य किया। तब श्रीराम ने धर्म तथा तपश्चर्या में निरत रहनेवाली शबरी से पूछा—

कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः।
कच्चित्ते नियतः क्रोध आहारश्च तपोधने॥ ७॥

हे तपस्विनि! तपश्चर्या में विघ्न डालनेवाले काम आदि छह शत्रुओं को तुमने जीत तो लिया है? तुम्हारी तपस्या में वृद्धि तो हो रही है? तुमने क्रोध को तो अपने वश में कर लिया है? तुम्हारे आहार आदि की प्रक्रिया नियमित तो है?

कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम्।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणि॥ ८॥

हे चारुभाषिणी! तुम यम-नियमों के पालन में सफल तो हो गई हो? तप के द्वारा प्राप्त होनेवाला सन्तोष, सुख एवं शान्ति तो तुम्हें प्राप्त हो गई है? तेरी गुरु-शुश्रूषा तो सफल हो गई है?

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता॥ ९॥

---

१. इस प्रकरण से यह स्पष्ट है कि शबरी ने श्रीराम लक्ष्मण का कन्दमूल-फलों से आतिथ्य किया था। वाल्मीकीय रामायण में जूठे बेरों की कहानी नहीं है। तुलसीकृत रामचरितमानस से भी इस मिथ्या धारणा का समर्थन नहीं होता। राम द्वारा शबरी के जूठे बेर खाने की कहानी सर्वथा निराधार, कपोलकल्पित एवं गप है।

जब श्रीराम ने शबरी से इस प्रकार के प्रश्न पूछे तब सिद्ध पुरुषों द्वारा सम्मानित उस वृद्धा तपस्विनी ने कहा—

अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्तव सन्दर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं तप्तं गुरवश्च सुपूजिताः ॥ १० ॥

हे राम ! आज आपके दर्शन से मैंने तपश्चर्या की सिद्धि प्राप्त कर ली। आज मेरा तप करना और गुरुजनों की सेवा सार्थक हुई।

इत्युक्त्वा जटिला वृद्धा चीरकृष्णाजिनाम्बरा।
तस्मिन् मुहूर्ते शबरी देहं जीर्णं जिहासती॥ ११ ॥
अनुज्ञाता तू रामेण हुत्वाऽऽत्मानं हुताशने।
ज्वलत्पावकसङ्काशा स्वर्गमेव जगाम सा॥ १२ ॥

श्रीराम से ऐसा कह जटाधारिणी तथा चीर एवं कृष्ण मृगचर्म पहननेवाली वह शबरी उसी समय अपनी पुरानी देह को त्यागने की इच्छा से, श्रीराम से अनुमति ले, जलती हुई अग्नि में प्रविष्ट होकर देदीप्यमान अग्नि के समान वह ब्रह्मलोक को सिधार गई।

दिवं तु तस्यां यातायां शबर्यां स्वेन तेजसा।
हितकारिणमेकाग्रं लक्ष्मणं राघवोऽब्रवीत्॥ १३ ॥

जब शबरी अपने तप और तेज के प्रभाव से स्वर्ग सिधार गई तब श्रीराम निश्चल रूप से बैठे हुए परम हितैषी अपने भाई लक्ष्मण से बोले—

तदागच्छ गमिष्यावः पम्पां तां प्रियदर्शनाम्।
ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नातिदूरे प्रकाशते॥ १४॥
यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवोंशुमतः सुतः।
नित्यं बालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिः सह वानरैः ॥ १५ ॥

हे लक्ष्मण! आओ, हम दोनों पम्पा-सरोवर के तट पर चलें, वहाँ से वह ऋष्यमूक पर्वत भी समीप ही है जहाँ राजर्षिपुत्र धर्मात्मा सुग्रीव बाली के भय से भयभीत होकर अपने चार मन्त्रियों के साथ सदा निवास करते हैं।

तदधीनं हि मे सौम्य सीतायाः परिमार्गणम्।
एवं ब्रुवाणं तं धीरं रामं सौमित्रिरब्रवीत्॥ १६ ॥

हे सौम्य ! सीताजी की खोज करना उसी के अधीन है, अतः हमें जल्दी चलना चाहिए। श्रीराम के ऐसा कहने पर अपने धैर्यवान् भाई से लक्ष्मणजी ने कहा—

गच्छावस्त्वरितं तत्र ममापि त्वरते मनः।
आश्रमात्तु ततस्तस्मान्निष्क्रम्य स विशाम्पतिः॥
आजगाम ततः पम्पां लक्ष्मणेन सह प्रभुः ॥ १७॥

हाँ, हमें शीघ्र ही चल देना चाहिए। मेरा मन भी वहाँ पहुँचने के लिए शीघ्रता कर रहा है। यह सुन प्रजापालक श्रीराम मतङ्ग आश्रम से निकलकर अपने भाई लक्ष्मण के साथ पम्पा-सरोवर के तट पर जा पहुँचे।

॥ इति अरण्यकाण्डम् ॥

—०—

अरण्यकाण्ड एक दृष्टि में—

सर्ग	३८
श्लोक-संख्या	८५९
टिप्पणियाँ	३०